मंगल जगे गृही जीवन में

आचार्य श्री सत्यनारायणजी गोयन्का

मंगल जगे गृही जीवन में

आचार्य श्री सत्यनारायणजी गोयन्का

विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी

© विपश्यना विशोधन विन्यास
सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : (नेपाल) २०००
द्वितीय (परिवर्धित) संस्करण : २०००
संस्करण : २००१, २००३, २००५, २००९, २०१२

मूल्यः रु. ४०/-

ISBN 978-81-7414-209-6

प्रकाशक:
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२ ४०३
जिला- नाशिक, महाराष्ट्र
फोन: ०२५५३-२४४०७६, २४४०८६, २४३७१२,
२४३२३८; फैक्स: ९१-२५५३-२४४१७६
Email: vri_admin@dhamma.net.in
info@giri.dhamma.org
Website: www.vridhamma.org

मुद्रकः
अपोलो प्रिंटिंग प्रेस
जी-२५९, सीकॉफ लिमिटेड, ६९ एम. आय. डी. सी.,
सातपुर, नाशिक-४२२००७, महाराष्ट्र

विषय-सूची

दो शब्द ५

मंगल-धर्म ७

श्रेष्ठ मंगल क्या है? ९

मित्र के प्रति व्यवहार १२

गृहस्थ धर्म १४

धम्मिक सुत्त १४

शील धर्म १७

सुखी-गृहस्थ १९

इहलोकीय हित-सुख के साधन : चार सद्‌गुण २०

पारलौकिक हित-सुख के साधन : चार धर्म-संपदा २२

सद्‌गृहस्थ की चार लौकिक संपदाएं २५

सद्‌गृहस्थ के चार लौकिक सुख २६

सद्‌गृहस्थ की चार अभिलाषाएं २९

सद्‌गृहस्थ की चार संपत्तियां ३१

सद्‌गृहस्थ के चार कर्तव्य ३४

गृही आचार-संहिता ३६

नमस्कार किसको करें? ३६

धन विनाश के छः कारण ३८

सही मित्र की पहचान ४०

वास्तविक छः दिशाएं ४२

१. माता-पिता की सेवा ४३

२. गुरुजनों की सेवा ४४

३. पत्नी की सेवा ४४

४. मित्र की सेवा ४५

५. नौकर की सेवा ४६
६. श्रमण-ब्राह्मण की सेवा ४६
आदर्श गृहस्थ ४८
हितकारी सत्पुरुष ४८
हितसुखमय गृहस्थ ४८
सुखी गृहपति ५२
विवाह धर्म-विधि ५४
चार प्रकार के सहवास ५४
मंगल मुहूर्त ५५
पांच वर्जित व्यापार ५६
हितसुखकारी दुर्लभ पंचरत्न ५६
धर्म रक्षा करता है ५७
अपने कर्म से ही सुगति-दुर्गति, प्रार्थना से नहीं ५७
अंधविश्वास का त्याग ५८
गृहस्थ को निर्वाण की प्राप्ति ५९
शीलवती गृहिणी ६०
कुल-वधू के लिए दस उपदेश ६३
उपदेशों का स्पष्टीकरण ६३
नवल वर-वधू के प्रति आशीर्वचन ६६
करणीयमेत्त-सुत्त ७२
परिशुद्ध दान ७५
दान-कथा ७७
दान-चेतना ८३
पराभव सुत्त ९२
मित्तानिसंस सुत्त ९५
मंगल हो! कल्याण हो! ९८
विपश्यना: संक्षिप्त परिचय ९९
विपश्यना साधना के केंद्र १०१
विपश्यना साहित्य १०४

दो शब्द

"राजकुमार सिद्धार्थ ने भरी युवावस्था में राजमहल का वैभव-विलास छोड़ा, सुंदरी सुशीला पत्नी तथा अपने बूढ़े मां-बाप को बिलखते छोड़ा और नवजात शिशु पुत्र राहुल को छोड़ा। दाढ़ी-मूंछ और सिर मुँड़ा कर, भगवा वस्त्र पहन कर भिक्षु बन गया। जब गौतम 'बुद्ध' बन गया, तब उसने ऐसी शिक्षा दी, जिससे हजारों लोगों ने उसका अनुकरण किया। रोते हुए मां-बाप, पुत्र-कलत्र को छोड़-छोड़ कर वे भी उसकी भांति भिक्षु बन गये। भिक्षुओं का संघ बढ़ता गया, घर परिवार उजड़ते गये। बुद्ध की शिक्षा का यही परिणाम हुआ। उसने स्वयं घर-बार छोड़ा, अतः गृहस्थ जीवन के प्रति घृणा फैलायी। शुद्धधर्म निवृत्ति का मार्ग है अतः प्रवृत्तिमार्गी गृहस्थ के लिए इस मार्ग पर न कोई आशा है न आश्वासन।"

ऐसी और इस जैसी अनेक मिथ्या बातें पिछले डेढ़ हजार वर्षों से अपने यहां निर्बाध रूप से प्रसारित होती रही हैं। इस मिथ्यात्व के उद्गम और प्रचार का मुख्य कारण यही था कि बुद्ध-वाणी के हजारों पृष्ठों का विपुल साहित्य देश से विलुप्त हो गया। उसका एक पृष्ठ भी नहीं बचा। जो सर्वजन हितकारिणी विपश्यना विद्या कभी घर-घर में प्रचलित थी, उसका प्रशिक्षण तो दूर, उसका नाम तक विस्मृत हो गया। शब्दकोष से यह शब्द ही निकल गया। ऐसा चाहे जिस कारण से हुआ हो, परंतु यह सत्य है कि इससे हम इस देश के एक विश्ववंद्य ऐतिहासिक महापुरुष और उनकी कल्याणी विद्या को गँवा बैठे। अब सौभाग्य से यह सारा साहित्य और उनकी सिखायी हुई विपश्यना विद्या पड़ोसी देश से भारत लौट कर आयी है और भारत के ही नहीं, पश्चिम के अनेक देशों के लोगों ने भी इसे बिना झिझक स्वीकार किया है और यह संख्या बढ़ती ही जा रही है।

अब यह सत्य स्पष्ट होता जा रहा है कि भगवान बुद्ध की शिक्षा सबके लिए थी– कोई भिक्षु हो या गृहस्थ। उनकी शिक्षा केवल गृहत्यागियों के लिए ही नहीं थी, बल्कि गृहस्थों के लिए भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण और मंगल फलदायिनी थी। गृहस्थ अपना गृही जीवन कैसे सुख-शांति से बिता सकें, इसका व्यावहारिक निर्देश भगवान की शिक्षा में भरा पड़ा है। परंतु लोगों को इसकी पूरी जानकारी नहीं है। अब भी अनेक लोगों के मन में यह भ्रांति समायी हुई है कि बुद्ध की शिक्षा गृहत्यागियों के लिए है, गृहस्थों के लिए नहीं।

इस भ्रांति को दूर करने के लिए विपश्यना विशोधन विन्यास की 'विपश्यना' पत्रिका में समय-समय पर बुद्ध-वाणी के आधार पर जो लेख निकले हैं, उन्हें इस पुस्तिका में संकलित कर प्रकाशित किया गया है, ताकि लोगों के मानस से मिथ्या भ्रांति दूर हो। गृहस्थों के लिए जितने सदुपदेश इस पुस्तिका में संकलित किये गये हैं, वस्तुतः उससे कई गुना अधिक बुद्ध-वाणी में विद्यमान हैं। इनसे बुद्धानुयायी देशों के करोड़ों गृहस्थ लाभान्वित होते रहे हैं, आज भी हो रहे हैं।

हमारे देशवासी यह जान लें कि भगवान बुद्ध ने सद्गृहस्थों के लिए कितनी व्यावहारिक और कल्याणकारी शिक्षा दी। इससे प्रेरित होकर अधिक से अधिक गृहस्थ भगवान के बताये मार्ग पर चल कर अपना कल्याण साध लें! अपना मंगल साध लें! यह पुस्तिका उनके लिए प्रभूत प्रेरणा का कारण बने!!

विपश्यना विशोधन विन्यास,
धम्मगिरि, इगतपुरी

मंगल-धर्म

मेरे प्यारे साधक साधिकाओ!

मंगल-धर्म मंगल का भंडार है। मंगल-धर्म सर्वथा सार्वजनीन है। मानव मात्र के लिए समान रूप से **कल्याणकारी** है। गृहस्थ के लिए सर्वोत्तम जीवन आदर्श है। कदम-कदम गृहीजीवन के उत्तरदायित्व को निभाते हुए, मानव जीवन को उसके चरम लक्ष्य की ओर ले जाने वाला कल्याणकारी राजमार्ग है। पारिवारिक और सामाजिक सौमनस्य के लिए वरदान है, मंगल-धर्म। लोक और परलोक सुधारने के लिए विमल विधान है, मंगल-धर्म। मंगल-धर्म का कोई भी अंश ऐसा नहीं है, जो कि किसी भी गृहस्थ के लिए अग्राह्य हो।

आओ, देखें क्या है यह मंगल-धर्म?

मूर्खों की संगत न करना मंगल-धर्म है। सत्पुरुषों की संगत करना मंगल-धर्म है। जो पूज्य हैं उनका आदर-सत्कार करना मंगल-धर्म है। धर्मानुकूल प्रदेश में निवास करना मंगल-धर्म है। पुण्य कर्मों का संचय मंगल-धर्म है। आत्मसंयम मंगल-धर्म है। जीवनयापन के लिए यथोचित विद्या और शिल्प का सीखना मंगल-धर्म है। विनीत रहना मंगल-धर्म है। सम्यक वाणी मंगल-धर्म है। माता-पिताकी सेवा मंगल-धर्म है। पुत्र-कलत्र का पालन-पोषण मंगल-धर्म है। निष्पाप व्यवसाय मंगल-धर्म है। दान और धर्माचरण मंगल-धर्म है। बंधु-बांधवों की सहायता करना मंगल-धर्म है। अनर्थकारी वर्जित कामों का न करना मंगल-धर्म है। पापों से विरत रहना मंगल-धर्म है। मदिरा-सेवन से बचना मंगल-धर्म है। सजग, सचेत, अप्रमत्त रहना मंगल-धर्म है। गुरुजन के प्रति आदरभाव रखना, विनम्र, संतुष्ट और कृतज्ञ रहना मंगल-धर्म है। यथोचित समय पर धर्म-श्रवण करना मंगल-धर्म है। श्रमण-संतों का दर्शन मंगल-धर्म है। यथोचित समय पर धर्म-परामर्श करना मंगल-धर्म है। तप तथा ब्रह्मचर्य पालन मंगल-धर्म है। दुःख, दुःख का

कारण, उसका निवारण तथा निवारण का उपाय – इन चारों सच्चाइयों का साक्षात्कार कर अनार्य से आर्य बन जाना मंगल-धर्म है। इंद्रियातीत निर्वाणिक अवस्था का स्वयं प्रत्यक्षीकरण कर लेना मंगल-धर्म है। जीवन के उतार-चढ़ाव में मन को अविचलित रखना मंगल-धर्म है। निर्भय, निर्मल और निःशोक रहना मंगल-धर्म है।

साधको! इन मंगल-धर्मों का पालन करने वाला कोई भी व्यक्ति चाहे जिस जाति-वर्ण, वर्ग-संप्रदाय व देश-काल का हो, सुखलाभी ही होता है। आओ, इन मंगल-धर्मों का निष्ठापूर्वक पालन करें। मैं अपने निजी अनुभवों से जानता हूं कि सरल है, इन धर्मों का उपदेश देना और सरल है, इनकी महत्ता को बौद्धिक व हार्दिक स्तर पर स्वीकार कर लेना। परंतु कठिन है, अत्यंत कठिन है, इन सबका अक्षरशः पालन करना। कदम-कदम पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। बाहरी कठिनाइयां और उनसे भी अधिक अपनी ही भीतरी कठिनाइयां। परंतु इन कठिनाइयों का सामना तो करना ही होगा। इनसे तो संग्राम करना ही होगा। यह संग्राम ही तो जीवन है। यही तो मंगल-धर्म की साधना है।

आओ, इस संग्राम में जूझते हुए, गिरते-पड़ते हुए, गिर-गिर कर फिर उठते हुए आगे बढ़ते रहने के लिए कृतसंकल्प हों! प्रयत्नरत हों! इसी में हमारा सच्चा मंगल निहित है!

श्रेष्ठ मंगल क्या है?

एक समय भगवान श्रावस्ती नगर के जेतवन उद्यान में श्रेष्ठी अनाथपिंडिक द्वारा बनवाये संघाराम में विहार कर रहे थे। उस समय भगवान से पूछा गयाः–

बहू देवा मनुस्सा च, मङ्गलानि अचिन्तयुं।
आकङ्खमाना सोत्थानं, ब्रूहि मङ्गलमुत्तमं॥

– कल्याण की कामना करते हुए कितने ही देव और मनुष्य मंगल-धर्मो के संबंध में चिंता-मग्न रहे हैं। हे तथागत! आप ही कृपा कर बताइए कि वास्तविक श्रेष्ठ मंगल क्या है?

भगवान – हे आयुष,

असेवना च बालानं – अज्ञानियों से दूर रहना,
पण्डितानञ्च सेवना – ज्ञानियों की संगति करना और
पूजा च पूजनेय्यानं – जो पूजनीय हैं उनकी पूजा करना
एतं मङ्गलमुत्तमं – यह श्रेष्ठ मंगल है।

पतिरूपदेसवासो च – उपयुक्त देश में निवास करना,
पुब्बे च कतपुञ्ञता – पूर्व कर्मो का संचित पुण्य होना और
अत्तसम्मापणिधि च – स्वयं को सम्यकरूपेन समाहित रखना
एतं मङ्गलमुत्तमं – यह श्रेष्ठ मंगल है।

बाहुसच्चञ्च सिप्पञ्च – अनेक विद्याओं और शिल्प-कलाओं में निपुण होना,
विनयो च सुसिक्खितो – विनय स्वभाव में सुशिक्षित होना और
सुभासिता च या वाचा – वार्तालाप में सुभाषी होना
एतं मङ्गलमुत्तमं – यह श्रेष्ठ मंगल है।

माता-पितु उपट्ठानं – माता-पिता की सेवा करना,
पुत्तदारस्स सङ्गहो – परिवार का पालन-पोषण करना और
अनाकुला च कम्मन्ता – आकुल-उद्विग्न न करनेवाला निष्पाप व्यवसाय करना,
एतं मङ्गलमुत्तमं – यह श्रेष्ठ मंगल है।

दानञ्च धम्मचरिया च – दान देना, धर्माचरण करना,
ञातकानञ्च सङ्गहो – सजातीय संबंधियों की सहायता कर संग्रह करना
अनवज्जानि कम्मानि – और वर्जित दुष्कर्म न करना
एतं मङ्गलमुत्तमं – यह श्रेष्ठ मंगल है।

आरती विरती पापा – तन-मन से पापों का त्याग करना,
मज्जपाना च संयमो – मदिरा-सेवन से दूर रहना और
अप्पमादो च धम्मेसु – कुशल-धर्मो के पालन में सदा सचेत रहना
एतं मङ्गलमुत्तमं – यह श्रेष्ठ मंगल है।

गारवो च निवातो च – पूजनीय व्यक्तियों को गौरव देना, सदा विनीत रहना,
सन्तुट्ठि च कतञ्ञुता – संतुष्ट रहना, कृतज्ञ रहना और
कालेन धम्मस्सवनं – उचित समय पर धर्म-श्रवण करना
एतं मङ्गलमुत्तमं – यह श्रेष्ठ मंगल है।

खन्ती च सोवचस्सता – सहनशील होना, आज्ञाकारी होना,
समणानञ्च दस्सनं – श्रमणों का दर्शन करना और
कालेन धम्मसाकच्छा – उचित समय पर धर्म-चर्चा करना
एतं मङ्गलमुत्तमं – यह श्रेष्ठ मंगल है।

तपो च ब्रह्मचरियञ्च – तप-साधन करना, ब्रह्मचर्य पालन करना
अरियसच्चान दस्सनं – चार आर्य-सत्यों का दर्शन करना और
निब्बानसच्छिकिरिया च – निर्वाण का साक्षात्कार करना
एतं मङ्गलमुत्तमं – यह श्रेष्ठ मंगल है।

फुट्ठस्स लोकधम्मेहि – (लाभ-अलाभ, यश-अपयश, निंदा-प्रशंसा और सुख-दुःख – इन आठ प्रकार के) लोक-धर्मो के स्पर्श से
चित्तं यस्स न कम्पति – चित्त विचलित नहीं होने देना,
असोकं विरजं खेमं – निःशोक, निर्मल और निर्भय रहना
एतं मङ्गलमुत्तमं – यह श्रेष्ठ मंगल है।

एतादिसानि कत्वान, सब्बत्थमपराजिता।
सब्बत्थ सोत्थिं गच्छन्ति, तं तेसं मङ्गलमुत्तमं॥

– खुद्दकपाठ ५.१–१३, मङ्गलसुत्त

– जो उपर्युक्त (अड़तीस) मंगल धर्मो का पालन करते हुए सर्वत्र जय-लाभी होते हैं, सर्वत्र कल्याणलाभी होते हैं, उन मंगल-मार्गियों के ये ही श्रेष्ठ मंगल हैं।

मित्र के प्रति व्यवहार

मित्र वही जो हमारे मंगल में सहायक हो, कल्याण में सहयोगी हो, भलाई में साथी हो। ऐसा व्यक्ति जो भी हो, हमारा हितैषी है। उसके प्रति कृतज्ञतापूर्ण मंगल मैत्री का सद्भाव रखना सर्वथा उपयुक्त है, सर्वथा समीचीन है।

ऐसे किसी मित्र के प्रति किसी भी कारण से जब हमारे मन में दुर्भाव जागता है, तो वह हमारे दूषित चित्त का ही परिचायक होता है। मित्र के प्रति दुर्भावना से भरा चित्त उस मित्र का कुछ बिगाड़े या न बिगाड़े, परंतु हमारा अनर्थ अवश्य करता है। सामान्यत: हमारा दूषित चित्त हमें व्याकुल बनाता है, परंतु अपने किसी उपकारी मित्र के प्रति उत्पन्न हुआ दूषित चित्त तो अत्यधिक व्याकुल बनाता है। यह अनुभूत सत्य है, अनुभवगम्य सत्य है।

ऐसे किसी मित्र के प्रति जब हमारे मन में सद्भाव जागता है, तो वह हमारे स्वच्छ, सरल चित्त का ही परिचायक होता है। सद्भावों से भरा मांगलिक चित्त उस मित्र का जितना भला करता है, उससे कहीं अधिक हमारा अपना भला करता है। सामान्यत: हमारा सद्भावित चित्त हमें हर्षित-पुलकित करता है, परंतु अपने किसी उपकारी मित्र के प्रति उत्पन्न हुआ सद्भावित चित्त हमें अत्यधिक हर्षित-पुलकित करता है। यह अनुभूत सत्य है, अनुभवगम्य सत्य है।

हो सकता है, कोई व्यक्ति जो कभी हमारा परम मित्र रहा हो, परम हितैषी रहा हो, किंतु किसी कारणवश, भ्रांतिवश, स्वार्थपरतावश अथवा हमारी ही किन्हीं भूल के कारणवश यदि आज हमारा परम शत्रु बन गया हो, हमारे जीवन का ग्राहक बन बैठा हो तो उसे गलत काम करने से रोकने के लिए कठोर से कठोर व्यवहार करते हुए भी अपने अंतस को उसके प्रति असीम मंगल-मैत्री से ही भरे रखना है। यही उपयुक्त है।

उस व्यक्ति के वर्तमान व्यवहार को महत्त्व न देकर अतीत में जब कभी उसने हमारा जो भी उपकार किया हो, उसे याद करें। उसके प्यार-दुलार को, स्नेह-सौमनस्यता को याद करें और उन्हीं यादों के आधार पर अपने मन की मृदुलता बनाये रखें, सद्भावना बनाये रखें। ऊपर-ऊपर से भले कठोर चट्टानी पत्थर दिखें, पर भीतर से तो छलछलाते निर्मल निर्झर बने रहें।

साधको, मैं जानता हूं यह आसान नहीं है। जब कोई व्यक्ति अनीति का बर्ताव करने लगता है, तो उसके प्रति तिलमिला उठना आसान है, मैत्री जाग्रत करना कठिन है, बहुत कठिन है। परंतु कठिन होते हुए भी यही तो करणीय है। यही साधना है। यही तप है। यही संग्राम है। अपने आपके प्रति संग्राम। अपनी दुर्बलताओं के प्रति संग्राम। और यह संग्राम जीवन भर का है। सच है! शूर का संग्राम दो-चार घड़ी का ही होता है। रण-भूमि में उतरा, दो-दो हाथ हुए और बात समाप्त। पर साधक का संग्राम तो जीवन भर चलता है। जीवन भर जूझते रहना है उसे तो –

शूर संग्राम है घड़ी दो-चार का,
लड़-लड़ कर वीरगति पाई।
संत संग्राम है रात-दिन जूझना,
देह-परजंत का काम भाई॥

रात-दिन जूझना है। देह-पर्यंत जूझना है। अनीति और अन्याय की कठिन स्थितियां जीवन में जब-जब आयें, तब-तब एक ओर उनका प्रबल प्रतिकार करते रहना है, दूसरी ओर रोम-रोम को मंगल भावों से परिपूरित रखना है।

मंगल हो! कल्याण हो! भला हो!

गृहस्थ धर्म

धम्मिकसुत्त

गहट्ठवत्तं पन वो वदामि, यथाकरो सावको साधु होति।
न हेसो लब्भा सपरिग्गहेन, फस्सेतुं यो केवलो भिक्खुधम्मो॥

– कोई परिग्रही (गृहस्थ) संपूर्ण रूप से भिक्षु धर्म का परिपालन नहीं कर सकता। अतः मैं तुम्हें गृहस्थ धर्म बताता हूं जिसे पालन करने वाला श्रावक गृही सज्जन बन जाता है, सत्पुरुष बन जाता है।

पाणं न हने न च घातयेय्य, न चानुजञ्ञा हनतं परेसं।
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं, ये थावरा ये च तसा सन्ति लोके॥

– न स्वयं किसी प्राणी की हत्या करे, न किसी से करवाये और न ही दूसरों को हत्या करने की अनुमति दे। संसार में जितने भी स्थावर व जंगम प्राणी हैं, सब के प्रति हिंसा त्याग दे।

ततो अदिन्नं परिवज्जयेय्य, किञ्चि क्वचि सावको बुज्झमानो।
न हारये हरतं नानुजञ्ञा, सब्बं अदिन्नं परिवज्जयेय्य॥

– और फिर समझदार श्रावक बिना दी हुई किसी अन्य की कोई वस्तु ग्रहण करना छोड़ दे। न चुराये और न ही किसी को चुराने की अनुमति दे। सब प्रकार की चोरी का सर्वथा परित्याग कर दे।

अब्रह्मचरियं परिवज्जयेय्य, अङ्गारकासुं जलितंव विञ्ञू।
असम्भुणन्तो पन ब्रह्मचरियं, परस्स दारं न अतिक्कमेय्य॥

– समझदार व्यक्ति अब्रह्मचर्य को जलते हुए अंगारों से भरे गढे की तरह त्याग दे। और यदि ब्रह्मचर्य का पालन असंभव हो तो पर-स्त्री गमन तो न ही करे।

सभग्गतो वा परिसग्गतो वा, एकस्स वेको न मुसा भणेय्य।
न भाणये भणतं नानुजञ्ञा, सब्बं अभूतं परिवज्जयेय्य॥

– सभा या परिषद में जाकर एक-दूसरे के लिए न झूठ बोले, न बुलवाये और न बोलने की अनुमति ही दे। सब प्रकार के मिथ्या भाषण को सर्वथा त्याग दे।

मज्जं च पानं न समाचरेय्य, धम्मं इमं रोचये यो गहट्ठो।
न पायये पिवतं नानुजञ्ञा, उम्मादनन्तं इति नं विदित्वा॥

– जो गृहस्थ सद्धर्म का इच्छुक है उसे चाहिए कि मदिरा को उन्मादजनक समझकर उसे न स्वयं पिये, न पिलाये और न ही पीने की अनुमति दे।

मदा हि पापानि करोन्ति बाला, कारेन्ति चञ्ञेपि जने पमत्ते।
एतं अपुञ्ञायतनं विवज्जये, उम्मादनं मोहनं बालकन्तं॥

– मूढ़ लोग मद के कारण ही पापकर्म करते हैं और अन्य मद-प्रमत्त लोगों से कराते हैं। इस पाप के अड्डे को त्याग दे, जो कि उन्मादक है, मोहक है और बालरंजक है यानी मूर्खो को प्रिय है।

पाणं न हने न चादिन्नमादिये, मुसा न भासे न च मज्जपो सिया।
अब्रह्मचरिया विरमेय्य मेथुना, रत्तिं न भुञ्जेय्य विकालभोजनं॥

– प्राणी-हत्या न करे, चोरी न करे, झूठ न बोले और मदिरापान न करे। अब्रह्मचर्य, मैथुन से विरत रहे और रात्रि में विकाल भोजन न करे।

मालं न धारे न च गन्धमाचरे, मञ्चे छमायं व सयेथ सन्थते।
एतं हि अट्ठङ्गिकमाहुपोसथं, बुद्धेन दुक्खन्तगुना पकासितं॥

– न माला धारण करे और न सुगंधि का सेवन करे। मंच पर सोये या जमीन पर या कंबल-सतरंजी पर। इसे अष्टांगिक उपोसथ यानी अष्टशील कहते हैं। दुःख-पारंगत बुद्धों द्वारा यह प्रकाशित किया गया है।

ततो च पक्खस्सुपवस्सुपोसथं, चातुद्दसिं पञ्चदसिं च अट्ठमिं।
पाटिहारियपक्खं च पसन्नमानसो, अट्ठङ्गुपेतं सुसमत्तरूपं॥

– प्रत्येक पक्ष की चतुर्दशी, पूर्णिमा, अष्टमी तथा अन्य पर्व के दिनों में शुद्ध चित्त से इन अष्ट-उपोसथ शील धर्मो का सम्यक प्रकार से पालन करे।

ततो च पातो उपवुत्थुपोसथो, अन्नेन पानेन च भिक्खुसङ्घं।
पसन्नचित्तो अनुमोदमानो, यथारहं संविभजेथ विञ्ञू॥

– समझदार व्यक्ति उपोसथ व्रत धारण कर प्रातःकाल मुदित मन से श्रद्धापूर्वक भिक्षु संघ को, संतों को अन्न और पेय का यथाशक्ति दान करे।

धम्मेन मातापितरो भरेय्य, पयोजये धम्मिकं सो वणिज्जं।
एतं गिही वत्तयं अप्पमत्तो, सयंपभे नाम उपेति देवेति॥

– सुत्तनिपात ३९५-४०६, धम्मिकसुत्त

– अपने को किसी धार्मिक व्यवसाय में लगाये और धर्मपूर्वक माता-पिता का पोषण करे। जो गृहस्थ अप्रमत्त होकर इस प्रकार सदाचरण करता है वह स्वयंप्रभ देवों में जन्म लेता है।

शील धर्म

शील धर्म पालन करना, सामाजिक व्यवस्था का पालन करना है। संपूर्ण समाज की व्यवस्था किसी संप्रदाय-विशेष की व्यवस्था नहीं। अतः शील धर्म पर किसी संप्रदाय विशेष का एकाधिकार नहीं है। शील-सदाचार का पालन सभी संप्रदायों को मान्य है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज की सुव्यवस्था बनाये रखने में उसकी अपनी सुरक्षा निहित है। समाज की सुख-शांति बनाये रखने में उसकी अपनी सुख-शांति निहित है।

जब कोई व्यक्ति हत्या करता है, परायी वस्तु चुराता है, व्यभिचार करता है, झूठ बोलता है, मदिरा-प्रमत्त होता है तो सामाजिक व्यवस्था को अस्त-व्यस्त करता है। सामाजिक सुख-शांति को भंग करता है। इसके विपरीत जब वह इन पांच शीलों का पालन करता है तो सामाजिक सुव्यवस्था स्थिर करने में सहायक होता है। सामाजिक सुख-शांति कायम रखने में मददगार बनता है। परंतु ऐसा करके वह किसी पर एहसान नहीं करता। औरों के साथ-साथ अपना भी भला करता है। यही शील धर्म है, सामाजिक धर्म है। अतः सर्व धर्म है।

पांच शीलों का ठीक-ठीक पालन करने के लिये मन को वश में करना तथा उसे विकार-विहीन रखना बहुत आवश्यक है। इसीलिए साधना भावना है जिसके अभ्यास द्वारा मन संयत होता है, विरज-विमल होता है, सद्गुण-संपन्न होता है। साधना भावना द्वारा शील-पालन सरल होता है। शील-पालन द्वारा साधना-भावना सरल होती है। दोनों अन्योन्याश्रित है। साधना भावना के अभ्यास को पुष्ट करने के लिये जब हम कुछ दिनों के लिए अन्य सारी प्रवृत्तियों को त्यागकर गंभीरतापूर्वक निरंतर अभ्यास करने का निर्णय करते हैं, तो किसी साधना-शिविर में सम्मिलित होते हैं। परंतु एक साथ अधिक दिनों तक किसी शिविर में बार-बार न जा सकें तो सप्ताह

में, पक्ष में अथवा महीने में ही एक दिन घर पर अथवा किसी एकांत स्थान पर साधना भावना का निरंतर अभ्यास करना आवश्यक है। ऐसे समय पांच शील तो पालते ही है परंतु उनके अतिरिक्त तीन शील और ग्रहण करते हैं, यथा – विकाल भोजन यानी दोपहर बाद के भोजन से विरत रहते हैं; श्राृंगार-प्रसाधन तथा आमोद-प्रमोद से विरत रहते है; विलासी शैय्या पर शयन से विरत रहते हैं। इससे साधना-भावना में प्रभूत सहायता मिलती है।

उपरोक्त पांच शीलों की भांति ये तीन शील भी सार्वजनीन हैं। सामाजिक व्यवस्था में इनका सीधा संबंध भले न हो, परंतु व्यक्ति-व्यक्ति को सुधारने में इनका बड़ा हाथ है। इनसे मन पर संयम होता है। सादगी का सद्गुण पुष्ट होता है। त्याग की भावना प्रबल होती है। और सबसे बड़ी बात यह कि इनके सहयोग से साधना भावना में गहरा उतरना संभव होता है जिससे कि साधक सर्वतोमुखी लाभ हासिल करता है। व्यक्ति लाभान्वित होता है तो समाज लाभान्वित होता है। व्यक्ति-व्यक्ति में सुधार होता है तो संपूर्ण समाज में सुधार होता है।

साधको! इन शीलों के पालन से प्रत्यक्षतः हमारा जीवन सुधरता है, लोक सुधरता है। लोक सुधरे बिना परलोक कैसे सुधरे भला? अतः यह विश्वास किया जा सकता है कि शील-पालन से यदि हमारा लोक सुधारता है तो परलोक भी अवश्य सुधरता है।

जिन शीलों के पालन से व्यक्ति और समाज दोनों सुधरते हों, लोक और परलोक दोनों सुधरते हों, उनके पालन में हजार कठिनाइयां हों तो भी हमें उनका सामना करना ही चाहिए। जब तक सभी शीलों के पालन में संपूर्ण संपुष्टि नहीं आ जाती, तब तक जितने शील पाल सकते हैं उन्हें दृढ़तापूर्वक पालते हुए शेष के पालन की पूरी-पूरी चेष्टा करें और शनैः शनैः धर्मपथ पर आगे बढ़ने के लिए कृतसंकल्प हों। इसी में हम सबका मंगल समाया हुआ है।

सुखी-गृहस्थ

संन्यासी का जीवन धन्य है, पूज्य है, प्रणम्य है, क्योंकि विरक्त संन्यासी का जीवन जीकर जीवन्मुक्त हो सकना सुकर है। परंतु समाज में बहुत थोड़े ही लोग होते हैं जो कि शुद्ध संन्यास-जीवन जीने का सत्प्रयास कर पाते हैं। बहुसंख्यक तो गृहस्थ-जीवन ही जीते हैं। गृहस्थ का कीचड़-भरा जीवन जीना सुकर है, परंतु निर्मल जीवन जीना दुष्कर है। वस्तुतः निर्मल गृहस्थ-जीवन ही सुखी गृहस्थ-जीवन है।

मुख्य प्रश्न यह है कि अनेक ऐंद्रिय रस-भोगों को भोगने वाला, पारिवारिक, सामाजिक और राजकीय जंजालों में उलझा रहने वाला सामान्य गृहस्थ निर्मल, स्वस्थ, सुखी जीवन कैसे जीये? वह गृहत्यागी नहीं है इसलिए लोक-विमुख हो नहीं सकता। लोक अभिमुख रहते हुए भी वह अपना इहलोक कैसे सुधारे? परलोक कैसे सुधारे? दुःख-विमुक्ति कैसे प्राप्त करे? मनुष्य-जीवन को कैसे सार्थक-सफल बनाये? क्या पुरुषार्थ करे, जिससे कि गृही रहते हुए भी जीवन सफल हो?

ऐसे प्रश्न भगवान के जीवनकाल में भी अनेक सद्गृहस्थों के मन में उठते थे और तत्संबंधी समाधान के लिए लोग उनसे मार्ग-निर्देशन लेने जाते थे। ऐसे अवसरों पर भगवान ने जो उपदेश दिये, वे सभी गृहस्थों के लिए अत्यंत कल्याणकारी हैं। २५०० वर्ष पश्चात आज भी वे उतने ही ताजा हैं, सजीव हैं, सार्थक हैं। अतः शाश्वत हैं, सार्वकालिक हैं, सतत प्रासंगिक हैं। शुद्ध धर्म की तरह ये उपदेश भी सभी गृहस्थों के लिए समान रूप से कल्याणकारी हैं, भले गृहस्थ चाहे जिस जाति, कुल, गोत्र, वर्ण, संप्रदाय अथवा रंग-रूप का हो। अतः ये उपदेश सार्वजनीन हैं, सर्वहितकारी हैं। अत्यंत व्यावहारिक हैं। सभी गृहस्थों के लिए अभ्यास किये जाने योग्य है।

इहलोकीय हित-सुख के साधनः चार सद्गुण

एक बार भगवान कोलिय प्रदेश में विहार कर रहे थे। उस समय कोलिय-पुत्र दीर्घजानु नाम का गृहस्थ भगवान से मिलने आया। उन्हें सादर अभिवादन कर वह एक ओर बैठ गया और उसने इसी आशय का प्रश्न किया – "भंते भगवान! हम गृहस्थ हैं, कामभोगी हैं, घर-गृहस्थ की अनेक जिम्मेदारियों में उलझे रहते हैं। कृपया बताइए, हमारे लिए कौन-सा मार्ग है, जिस पर चल कर हम गृहस्थ रहते हुए भी अपना लोक-परलोक दोनों सुधार लें?"

व्यवहार-कौशल में निपुण भगवान ने गृहस्थ को इहलोक के हित-सुख साधन हेतु चार सद्गुण संग्रह करना आवश्यक बताया –

पहला सद्गुण है – पराक्रम-पुरुषार्थ। जो व्यक्ति जिस किसी कला, शिल्प, उद्योग-धंधे, पेशे-व्यवसाय, रोजी-रोजगार के माध्यम से अपना जीवन-यापन करता है, उसमें उसे दक्ष होना आवश्यक है। दक्ष होने के लिए अनिवार्य है कि वह उस पेशे का गहराई से अध्ययन करे, मनन करे, विश्लेषण करे। उसकी बारीकियों को स्वयं समझे और आलस-प्रमाद-विहीन होकर सतत अध्यवसाय द्वारा उसमें व्यावहारिक निपुणता प्राप्त करे ताकि उस पेशे को व्यवहार में उतार कर पूर्णतया सफल हो, अर्थलाभी हो। लोकीय सुख के लिए यही पराक्रम-पुरुषार्थ है।

सद्गृहस्थ की सचमुच अनेक जिम्मेदारियां होती हैं। उसे स्वावलंबी होकर स्वाभिमानपूर्वक अपना भरण-पोषण तो करना ही होता है। अपने पर आश्रित वृद्ध माता-पिता की सेवा-सुश्रूषा करनी होती है। अपने पुत्र-कलत्र का पालन-पोषण करना होता है। असमर्थ जाति-बंधुओं की यथाशक्य सहायता करके उन्हें स्वावलंबी बनाने का सत्कार्य करना होता है। गृहत्यागी श्रमण-ब्राह्मणों के भरण-पोषण के लिए यथासामर्थ्य दान देना होता है। समाज के अन्य अभावग्रस्त व्यक्तियों की यथाशक्ति सहायता करनी होती है। इन सबके लिए अपने पुरुषार्थ से, शारीरिक और बौद्धिक श्रम से, धर्म-न्यायपूर्वक संपदा अर्जित करनी पड़ती है।

सद्गृहस्थ का दूसरा सद्गुण यह है कि वह इस प्रकार निज श्रम से धर्मपूर्वक **अर्जित की हुई संपदा की सतर्कतापूर्वक सुरक्षा करे।** कहीं किसी गफलत या नासमझी में उसे गँवा न बैठे। राज्य के नियमों की पूरी जानकारी रखते हुए नियमानुकूल उसकी रक्षा करे। कोई निरंकुश शासक या शासनाधिकारी नियमों के विरुद्ध उसे जब्त न कर ले। अपनी नासमझी या लापरवाही से यह संपदा कहीं चोरों द्वारा चुरा न ली जाय, आग में जलकर भस्म न हो जाय, जल में बहकर नष्ट न हो जाय अथवा कोई अप्रिय व्यक्ति चालबाजी से उस पर अपना उत्तराधिकार न जमा ले। इन पांचों खतरों से अपनी अर्जित संपदा का सावधानीपूर्वक परिरक्षण करना गृहस्थ के लिए दूसरा आवश्यक सद्गुण है।

तीसरा सद्गुण है – धन का उचित उपयोग। इसमें भी व्यवहार कुशलता उतनी ही आवश्यक है। समझदार गृहस्थ को चाहिए कि अपनी आय और व्यय का लेखा-जोखा ठीक रखे। जीवन स्तर ऐसा रखे, जिससे संतुलन बिगड़ने न पाये। कहीं ऐसा न हो कि आय से अधिक व्यय करने लगे और नासमझी में कंगाली गले बांध ले। कहीं ऐसा भी न हो कि आय केवल संचय, संग्रह, परिग्रह के लिए ही होती चली जाय तथा उसका उपयोग न अपने लिए हो, न औरों के लिए। निपट कंजूसी में ही सारा जीवन न खो दे। कमायी हुई संपदा का बुद्धिमानीपूर्वक सदुपयोग करे। आय के उचित अनुपात में ही व्यय का स्तर रखे, न अधिक, न कम।

चौथा सद्गुण है – सत्संगति। बुरी संगति से बुरी लत लग जाने की आशंका बनी रहती है जिससे संपदा का अपव्यय होता है और चरित्र नाश होता है। परंतु यदि किसी धर्मप्राण सत्पुरुष की संगति रहेगी तो शील पालन के लिए, धर्म धारण करने के लिए, सात्विक जीवन जीने के लिए और प्रज्ञा पुष्ट करने के लिए प्रेरणा मिलती रहेगी, मार्गदर्शन मिलता रहेगा। अतः किसी संत पुरुष की कल्याण-मित्रता प्राप्त करना सद्गृहस्थ का चौथा गुण है।

जब कोई गृहस्थ कुसंगत में पड़ जाता है तो व्यभिचार, वेश्यागमन, नशे-पत्ते या जुए का व्यसन लगा लेता है और इस प्रकार आमदनी से

अधिक व्यय के रास्ते खुल जाते हैं और शीघ्र ही वह अपना कमाया हुआ धन खोकर कंगाल, दु:खी हो जाता है। इसी प्रकार जब कोई कुसंगत से बचकर किसी कल्याणमित्र की सत्संगति करता है तो इन बुरे व्यसनों से दूर रहता है और अपनी आय के अनुकूल खर्च कर सकने का निश्चय, निर्णय निभा पाता हुआ अपने धन को अपव्यय से बचाता है। यह बचाया हुआ धन गृहस्थ जीवन की जिम्मेदारी पूरी करने में लगाता है।

गृहस्थ के लिए यह चारों सद्गुण उसके लोकीय हित-सुख के साधन होते हैं। पूर्वकाल में भी थे, आज भी हैं और भविष्य में भी होंगे।

इहलोकीय हित-सुख के लिए इन चार आवश्यक सद्गुणों का उपदेश देकर भगवान ने परलोकीय हित-सुख के लिए भी चार सद्धर्मों का उपदेश दिया जो कि सभी गृहस्थों के लिए सभी समय धारण करने योग्य है और सबके लिए समान रूप से कल्याणकारी भी।

पारलौकिक हित-सुख के साधनः चार धर्म-संपदा

इहलोकीय हित-सुख के लिए चार आवश्यक सद्गुणों का उपदेश देकर भगवान ने कोलिय-पुत्र दीर्घजानु को परलोकीय हित-सुख के लिए भी चार धर्म-संपदाओं का उपदेश दिया जो कि सभी गृहस्थों के लिए समान रूप से धारण करने योग्य हैं, समान रूप से कल्याणकारी हैं।

ये धर्म-संपदाएं ऐसी हैं जिनके संचय-संग्रह से सद्गृहस्थ अपना पारलौकिक हित-सुख तो साधता ही है, परंतु इन्हें धारण करने का अभ्यास करते हुए यह देखता है कि ये इहलौकिक हित-सुख साधन में भी सहायक सिद्ध हो रही हैं।

इन चारों में से **पहली धर्म-संपदा है – श्रद्धा**। श्रद्धा धर्म की नींव है। बिना श्रद्धा धर्म का मंगल-भवन टिक नहीं सकता। बिना श्रद्धा धर्म लंगड़ा है। कोई भी व्यक्ति बिना श्रद्धा के धर्म पथ पर एक कदम भी चल नहीं सकता। लेकिन श्रद्धा शुद्ध हो, विवेक चक्षुवाली हो, तो ही कल्याणकारी होती है। अंध श्रद्धा हानिकारक है। यदि भगवान गौतम बुद्ध के प्रति श्रद्धा

जगी है तो सही माने में यह तभी कल्याणकारी होगी जबकि बोधि के प्रति श्रद्धा जागे और भगवान की बोधि से हम प्रेरणा प्राप्त करें। इसी प्रकार सद्धर्म के प्रति श्रद्धा जगी है तो धर्म के गुण ध्यान में आयें और धर्म धारण करने की प्रेरणा जागे। संत-समूह पर श्रद्धा जगी है तो आर्य संतों के सद्गुण हमारी चेतना को अनुप्राणित करें। ऐसी सविवेक श्रद्धा ही सद्गृहस्थ की अनमोल धर्म-संपदा है।

सद्गृहस्थ की **दूसरी धर्म-संपदा है– शील**। सद्गृहस्थ प्रयत्नपूर्वक हिंसा-हत्या से विरत रहता है। बिना दिया हुआ पराया धन चुराने से, छीनने से, दबाने से, हथियाने से, अपनाने से विरत रहता है। व्यभिचार से विरत रहता है। मिथ्या भाषण से विरत रहता है। ये पंचशील सद्गृहस्थ की अनमोल धर्म-संपदा हैं।

सद्गृहस्थ की **तीसरी धर्म-संपदा है – त्याग**। श्रमपूर्वक, बिना किसी को धोखा दिये धन-अर्जन करना गृहस्थ के लिए आवश्यक है, अनिवार्य है। परंतु यही धन-अर्जन जब केवल संचय, संग्रह, परिग्रह के हीन उद्देश्य से ही किया जाय तो पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता की होड़ की थकानभरी दौड़ गृहस्थ के जीवन को दुःखमय बना देती है। लेकिन यदि धन-अर्जन के साथ-साथ उसके सदुपयोग का विवेक बना रहता है तो सद्गृहस्थ अपने अर्जित, संचित धन का यथासमय, यथायोग्य त्याग करना सीखता है। इस प्रकार दान की पुण्य संपदा एकत्र करता है। दान जब शुद्ध होता है तभी पुण्यकारक होता है यानी चित्त को पुनीत करने वाला होता है। अन्यथा दान दान नहीं होता, सही माने में पुण्य नहीं होता। उदाहरण के तौर पर यदि कोई व्यक्ति चारण सदृश हमारी प्रशंसा-प्रशस्ति के पुल बांधे जा रहा हो और हम उससे खुश होकर उसे कुछ दे देते हैं, तो वह धन का त्याग तो अवश्य है, पर दान की धर्म-संपदा नहीं है। हमने खुशामद की कीमत चुकायी है। पैसे से प्रशंसा खरीदी है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति हमारे अपयश की, निंदा की धमकी देता है, हम पर ताने कसता हुआ कहता है – "तुम कैसे धनवान हो जो मेरी मांग पूरी नहीं करते ? तुम कैसे विपश्यी साधक हो जो मेरा दुःख दूर नहीं

करते?" तो हम इस धमकी से घबरा उठते हैं, भयभीत हो उठते हैं कि यह व्यक्ति हमारी कंजूसी का, दानहीनता का अपयश घर-घर फैलाते फिरेगा, हमारी प्रतिष्ठा को आंच आयगी। यों भयभीत चित्त की चेतना से उस धमकाने वाले याचक को जो धन देते हैं, वह दान की पुण्य-संपदा नहीं है। वह तो निंदक का मुँह बंद करने की कीमत चुकानी हुई। दूषित चित्त से त्यागा हुआ धन त्याग-संपदा नहीं है, दान-संपदा नहीं है। चित्त में अपरिग्रह का भाव हो। याचक पूज्य हो तो उसके प्रति श्रद्धा का, हीन हो तो उसके प्रति मैत्री-करुणा का भाव हो। यों शुद्ध चित्त से, उदार चेतना से, मुक्तहस्त से दिया हुआ दान ही दान संपदा है।

श्रद्धा, शील और त्याग की धर्म-संपदा संचित करता हुआ गृहस्थ **चौथी धर्म-संपदा** अर्जित करने का अभ्यास करता है। यह है – **प्रज्ञा-संपदा**। केवल श्रुतमयी और चिंतनमयी प्रज्ञा ही नहीं, बल्कि वह भावनामयी प्रज्ञा का अभ्यास करता है। इसका जिक्र करते हुए भगवान ने संक्षेप में कहा है –

कुलपुत्तो पञ्ञवा होति, उदयत्थगामिनीया पञ्ञाय समन्नागतो, अरियाय, निब्बेधिकाय सम्मा दुक्खक्खयगामिनीया। अयं वुच्चति पञ्ञासम्पदा।

– अङ्गुत्तरनिकाय ३.८.५४, दीघजाणुसुत्त

यानी गृहस्थ कुल-पुत्र प्रज्ञावान होता है – उदय-व्यय की अनुभूति कराने वाली प्रज्ञा, आर्य बनाने वाली प्रज्ञा, सभी शारीरिक और मानसिक घनत्व की मरीचिका को बींधकर ठोसपन समाप्त कर देने वाली, भेदन करने वाली प्रज्ञा, सभी दुःखों के क्षय स्वरूप निर्वाण का साक्षात्कार करा देने वाली प्रज्ञा उपलब्ध करता है। यही विपश्यना साधना वाली प्रज्ञा है जो कि सद्गृहस्थ की चौथी धर्म-संपदा है।

श्रद्धा, शील, त्याग (दान) और प्रज्ञा की चारों धर्म-संपदाएं निश्चित रूप से सद्गृहस्थ के पारलौकिक हित-सुख का साधन बनती हैं और साथ ही साथ लोकीय हित-सुख में भी सहयोगी सिद्ध होती हैं।

गृहस्थों के लिए भगवान ने जो लोकीय सद्गुण वाली संपदाएं यानी

परिश्रम-पराक्रम-संपदा, संरक्षण-संपदा, समजीविका-संपदा और कल्याणमित्रता-संपदा बतायीं तथा चारों पारलौकिक संपदाएं यानी श्रद्धा, शील, त्याग और प्रज्ञा की धर्म-संपदाएं बतायीं, वे प्रत्येक गृहस्थ के ग्रहण करने, धारण करने, संवर्धन करने और संचित करने योग्य हैं जिससे कि इन संपदाओं से संपन्न होकर वह अपना लोक और परलोक दोनों सुधार सके।

गृहस्थ साधको, आओ! इन आठों संपदाओं का प्रयत्नपूर्वक अर्जन करें और अपना वास्तविक हित-सुख साधें! मंगल-कल्याण साधें! स्वस्ति-मुक्ति साधें!

सद्गृहस्थ की चार लौकिक संपदाएं

भगवान के अनुयायियों की चार परिषदें थीं जो कि **चतस्सन्नं परिसानं** कहलाती थीं– (भिक्षुसंघ, भिक्षुणीसंघ, गृही उपासकसंघ और उपासिकासंघ (अङ्गुत्तरनिकाय ३.८.८, उत्तरविपत्तिसुख)। भगवान समय-समय पर इन चारों को धर्म-मार्ग का उपदेश देते थे। धर्म-साधना का अभ्यास कराते थे। मार्ग सबके लिए एक ही था– आर्य अष्टांगिक मार्ग। आठ अंगों वाला वह मार्ग जिस पर चल कर चारों परिषदों का कोई भी सदस्य शील, समाधि और प्रज्ञा में प्रतिष्ठित होता हुआ आर्य बन सके। साधना भी सबके लिए एक ही। **चत्तारो सतिपट्ठाना–** (कायानुपश्यना, वेदनानुपश्यना, चित्तानुपश्यना और धर्मानुपश्यना) जिसे उन्होंने दुःख-विमुक्ति के लिए और निर्वाण प्राप्त करने के लिए **एकायनो मग्गो** यानी एकमात्र मार्ग कहा। अतः इन चारों में से चाहे जिस परिषद का व्यक्ति हो, मार्गदर्शन का मूल आधार **अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो** एवं **चत्तारो सतिपट्ठाना** मार्ग ही होता था (दीघनिकाय २.३७२–४०५)। परंतु फिर भी चारों के जीवन जगत की परिस्थितियां भिन्न-भिन्न होने के कारण समय-समय पर उन्होंने चारों के लिए अलग-अलग व्यावहारिक उपदेश भी दिये। आचार-संहिता भी अलग-अलग बनी।

गृहस्थ के लिए मात्र पांच शील पालन करने अनिवार्य हैं जबकि

गृहत्यागी के लिए २०० से भी अधिक। गृहस्थ के लिए नितांत अपरिग्रही होना अनावश्यक है परंतु गृहत्यागी के लिए अत्यंत अनिवार्य। गृहस्थ के लिए कंगाली कलंक है, अवांछनीय है। उसे भार बन कर किसी पर आश्रित होना अत्यंत अशोभनीय है। उसके लिए स्वावलंबन ही शोभनीय है। गृहस्थ ईमानदारी के साथ कड़ी मेहनत करके धनोपार्जन करे। अपनी और राष्ट्र की संपदा बढ़ाये, खुशहाली बढ़ाये। भुखमरी गृही-धर्म नहीं है। किसी भूखे गृहस्थ को भगवान के पास धर्म सीखने के लिए लाया गया तो भगवान ने आदेश दिया कि इसे पहले भरपेट भोजन कराओ। भुखमरे व्यक्ति में और इसी प्रकार भुखमरे समाज में धर्म प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। इसीलिए उनकी मंगल कामना रही –

देवो वस्सतु कालेन, सस्स सम्पत्ति हेतु च।
फीतो भवतु लोको च, राजा भवतु धम्मिको॥

– यानी वर्षा समय पर हो, शस्य संपदा बढ़े। लोक में धर्म के आधार पर समृद्धि फैले। समाज धर्मनिष्ठ हो, जिसके लिए यह आवश्यक है कि शासक धर्मनिष्ठ हो। शासक की अच्छाई-बुराई का प्रभाव जनता पर पड़े बिना नहीं रहता।

सद्गृहस्थ के चार लौकिक सुख

इसीलिए गृहस्थ को उपदेश देते हुए उन्होंने कहा कि वह धन-उपार्जन करे परंतु अपने परिश्रम-पराक्रम से, ईमानदारीपूर्वक, न्याय-नीतिपूर्वक, धर्मपूर्वक, बिना किसी को धोखा दिये। **अपनी मेहनत और ईमानदारी से कमायी हुई लोकीय संपदा का होना** गृहस्थ के लिए लोकीय सुख का कारण बनता है। यह किसी भी गृहस्थ का **पहला लोकीय सुख है**। जो व्यक्ति लोकीय संपदा हासिल करता है, जिसके उपार्जन में उसने कभी कोई श्रम नहीं किया अथवा जिसे उसने अनीतिपूर्ण ढंग से हासिल किया तो वह संपदा उसके सही सुख का कारण नहीं बन सकती। ऐसा व्यक्ति गृहस्थ के इस प्रथम सुख से वंचित रह जाता है।

गृहस्थ का **दूसरा लोकीय सुख है –** अपनी मेहनत और ईमानदारी से कमायी हुई **संपदा का उचित उपभोग और संविभाजन यानी दान द्वारा सदुपयोग**। यदि कोई गृहस्थ अपनी कमायी हुई संपदा का लोभ और कंजूसीवश कोई उपयोग नहीं करता, न अपने लिए, न औरों के लिए तो ऐसा व्यक्ति सद्गृहस्थ के दूसरे सुख से वंचित रह जाता है। यदि कोई गृहस्थ नासमझीवश अथवा असावधानीवश अपनी कमायी हुई संपदा किसी अन्य व्यक्ति के प्रभुत्व में दे देता है और परिणामस्वरूप आवश्यकता पड़ने पर स्वयं अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए अथवा लोक-कल्याणहित दान देने के लिए भी उसमें से कुछ नहीं प्राप्त कर सकता तो वह भी गृहस्थ जीवन के इस दूसरे सुख से वंचित रह जाता है।

सद्गृहस्थ का **तीसरा लोकीय सुख है – ऋण-मुक्ति का सुख**। यदि कोई गृहस्थ नासमझी से अथवा परिस्थितियों से मजबूर होकर ऋण ले लेता है और ऋण की अदायगी नहीं कर पाता तो गृहस्थ जीवन के तीसरे सुख से वंचित रह जाता है। उऋण रहने का अपना सुख है। ऋणमुक्त होकर ही कोई यह सुख भोग सकता है।

सद्गृहस्थ का **चौथा लोकीय सुख है – शील संपदा, शील पालन**। बड़ा सुख है शील पालन में। कोई व्यक्ति नासमझी या असावधानी के कारण दुराचारी हो जाता है और हिंसा, चोरी, व्यभिचार, झूठ या मद्य सेवन में से किसी एक या एक से अधिक का सहारा लेकर अपना शील नष्ट कर लेता है तो वह शील पालन के इस अतुल सुख से वंचित रह जाता है। ऐसा व्यक्ति जब किसी कल्याणमित्र की संगति द्वारा धर्म धारण करने की कला सीखता है और शील में पुष्ट होता है तो इस चौथे सुख का अधिकारी होता है।

गृहस्थ के इन चारों सुखों का उपदेश भगवान ने गृहस्थ उपासक सुदत्त अनाथपिंडिक को श्रावस्ती के जेतवन में विहार करते हुए दिया। अनाथपिंडिक भगवान का अग्र उपासक शिष्य था। उसने समय-समय पर इन चारों सुखों को भोगा था।

१. उसने अपने श्रम से, धर्मपूर्वक धन संपदा अर्जित की थी। इसलिए विपुल धन संपदा का स्वामी होने का सुख भोगा था।

२. इस धर्मपूर्वक स्व-अर्जित संपदा को उसने अपने और अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए प्रयोग में लाकर तथा विपुल दान द्वारा उसका सदुपयोग करके दूसरा सुख भोगा था। एक बार उसके जीवन में ऐसी स्थिति भी आयी जबकि उसे धन के लिए मोहताज हो जाना पड़ा। उसका कमाया हुआ बहुत-सा धन नष्ट हो गया। जो बचा वह ऐसे लोगों के हाथ में था जो उसे लौटा नहीं रहे थे। ऐसी अवस्था में वह कुछ काल तक दूसरे सुख से वंचित रहा। परंतु धर्म के प्रभाव से उसे इस अवस्था से शीघ्र ही छुटकारा मिला और वह शेष जीवनपर्यंत उसका संयमित उपभोग एवं दान देने में सदुपयोग कर सका। इस प्रकार गृहस्थ जीवन के इस दूसरे सुख को भोगते रह सका।

३. धनहीन होने पर भी उसे किसी का ऋण नहीं चुकाना था, न अधिक, न कम। अतः ऋणमुक्त होने का सुख उसने सदैव भोगा।

४. भगवान के और भगवान के जरिए धर्म के संपर्क में आने से पहले उसने अपना शील-सदाचार भंग किया था। परंतु विपश्यना धर्म मिलने के बाद शील में पुष्ट हुआ। न शरीर से, न वाणी से और न ही मन से उसने कभी ऐसा दुष्कर्म किया जो कि दोषपूर्ण हो। ऐसे निर्दोष जीवन के सुख को भोगता हुआ वह अपना गृही जीवन सफल बना सका। प्रमादवश जो कभी दुराचरण कर चुका था, अब धर्म साधना द्वारा उसका निराकरण कर मुक्त हुआ (अङ्गुत्तरनिकाय १.४.६२, आनण्यसुत्त)। जैसे कि–

यो च पुब्बे पमज्जित्वा, पच्छा सो नप्पमज्जति।
सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तोव चन्दिमा॥

– धम्मपद १७२, लोकवग्ग

– जो प्रमादवश गलत काम कर भी चुका हो परंतु बाद में नहीं करता और दुष्कर्मों से छुटकारा पा लेता है, वह मेघमुक्त आकाश में चंद्रमा की भांति प्रकाशमान होता है।

यों चारों सुखों से संपन्न गृहस्थ चित्त को एकाग्र करता हुआ, विपश्यना का अभ्यास करता है, अंतर्मुखी होना सीखता है। अंतर्मुखी होकर भीतर ही भीतर उत्पन्न होने वाली सुखद-दु:खद संवेदनाओं को निर्लिप्त होकर यथाभूत देखना सीखता है। वह निर्लिप्त होकर देखता है कि संपदा के होने की, उसके उपभोग और सदुपयोग की और ऋणमुक्त होने की सुखद संवेदनाओं की तुलना में विपश्यना के अभ्यास द्वारा निर्दोष जीवन जीने की सुखद संवेदना कई गुना अधिक प्रबल है।

इसलिए गृहस्थ साधको! हम धर्मपूर्वक स्व-अर्जित संपदा, उसका सदुपयोग और ऋणमुक्ति-सुख को तो उपलब्ध करें, पर इनसे भी अधिक शील-संपदा संपन्न होने का सुख उपलब्ध कर मेघ-मुक्त चंद्रमा की भांति प्रकाशमान होकर सही माने में मंगललाभी हों!

सद्गृहस्थ की चार अभिलाषाएं

किसी भी सामान्य सद्गृहस्थ की ये चार स्वाभाविक अभिलाषाएं होती हैं।

१. वह चाहता है कि **विपन्न न रहे**। विपन्नता, गरीबी, भुखमरी, कंगाली गृहस्थ के लिए, गृहस्थ समाज के लिए अभिशाप है। भुखमरी में धर्म का पालन तो दूर उसका चिंतन भी कठिन हो जाता है। अतः गृहस्थ के लिए समृद्धि, संपन्नता की अभिलाषा स्वाभाविक है। समझदार गृहस्थ होता है तो यह भी समझता है कि धन-संपदा उसके अपने श्रम से अर्जित हो, धर्मपूर्वक अर्जित हो। बिना परिश्रम किये जो धन आता है वह उपयोगी नहीं होता, संतोषकारक नहीं होता। उसका अपव्यय ही होता है। इसी प्रकार अधर्मपूर्वक धन आता है तो वह भी सुख-शांति का कारण नहीं बनता। परायी संपदा दबोचकर, चुराकर, लूटकर, छीनकर, छल-छद्म द्वारा अपनी बना ले तो उससे अशांति ही उत्पन्न होती है। ऐसी संपदा का सदुपयोग नहीं होता, दुरुपयोग ही होता है। अतः समझदार सद्गृहस्थ की अभिलाषा यही होती है कि वह श्रमपूर्वक, धर्मपूर्वक, न्याय-नीतिपूर्वक समृद्धि-संपदा

अर्जित करे। यह पहली अभिलाषा है जिसकी पूर्ति किसी भी सद्गृहस्थ के लिए प्रिय होती है, मनोरम होती है, सुखद होती है पर दुर्लभ होती है।

२. श्रमपूर्वक, धर्मपूर्वक संपदा अर्जित कर ले तो सद्गृहस्थ की दूसरी अभिलाषा होती है कि **वह समाज में, गुरुजनों में यश प्राप्त करे**। भुखमरी की अवस्था में एक व्यक्ति धर्म-नीति को तिलांजलि देकर दुष्कर्म करने पर उतारू हो सकता है। पर जब भुखमरी नहीं हो तो सद्गृहस्थ की अभिलाषा होती है कि उसके द्वारा शरीर या वाणी से, छोटा या बड़ा, कोई भी ऐसा काम न हो जाय जो उसके अपयश का कारण बने। बिना दुष्कर्म किये यदि झूठी निंदा होती है तो समझदार सद्गृहस्थ उससे विचलित नहीं होता। परंतु दुष्कर्म करने पर जो निंदा होती है उससे वह लज्जित होता है, उत्तापित होता है। अतः स्वभावतः समझदार सद्गृहस्थ की यह अभिलाषा होती है कि वह धर्मपूर्वक यश का जीवन जीये। यह दूसरी अभिलाषा है जिसकी पूर्ति किसी भी सद्गृहस्थ के लिए मनोरम होती है, प्रिय होती है, सुखद होती है; पर दुर्लभ होती है।

३. धर्मपूर्वक, श्रमपूर्वक संपदा प्राप्त करके और शुभ कर्मो द्वारा यश प्राप्त करके एक सद्गृहस्थ की यह तीसरी अभिलाषा होती है कि **वह चिरकाल तक स्वस्थ जीवन जीये**। सद्गृहस्थ बखूबी समझता है कि मनुष्य-जीवन बड़ा अनमोल है। इसी जीवन में अंतर्मुखी होकर सत्य-दर्शन करते-करते, आत्म-दर्शन करते-करते परम सत्य का साक्षात्कार किया जा सकता है, जीवन्मुक्त हुआ जा सकता है। इसीलिए वह स्वस्थ, दीर्घायु जीवन जीना चाहता है। यह तीसरी अभिलाषा है जिसकी पूर्ति किसी भी सद्गृहस्थ के लिए प्रिय होती है, मनोरम होती है, सुखद होती है; पर दुर्लभ होती है।

४. धर्मपूर्वक श्रमपूर्वक संपदा प्राप्त करके, स्वजनों-गुरुजनों में धर्मपूर्वक यश प्राप्त करके, चिरकाल तक स्वस्थ जीवन जी लेने पर सद्गृहस्थ की चौथी अभिलाषा होती है कि **शरीर छूटने पर उसकी दुर्गति न हो, सद्गति हो, वह स्वर्गगामी हो**। वह बखूबी समझता है कि मरने के बाद यदि अपायगति, अधोगति प्राप्त हुई तो उसके बाहर निकलना अत्यंत कठिन हो

जायगा। अधोलोक के जीवन में धर्म धारण करने का प्रश्न ही नहीं उठता। ऊर्ध्वलोकगामी होगा तो जो धर्म साधना यहां सीखी है, उसका अभ्यास कायम रख सकेगा। धर्म पथ पर अग्रसर होता जायगा। परम विमुक्त अवस्था के समीप होता जायगा। अतः सद्गृहस्थ अभिलाषा करता है कि मर कर स्वर्गलोकगामी हो। यह चौथी अभिलाषा है जिसकी पूर्ति किसी भी सद्गृहस्थ के लिए प्रिय होती है, मनोरम होती है, सुखद होती है; पर दुर्लभ होती है।

– अङ्गुत्तरनिकाय १.४.६१, पत्तकम्मसुत्त

सद्गृहस्थ की चार संपत्तियां

भगवान ने अपने अग्र उपासक गृहपति अनाथपिंडिक को उपदेश देते हुए कहा कि इन चारों प्रिय, मनोरम, सुखद अभिलाषाओं की पूर्ति के चार धर्म साधन हैं, जिनसे दुर्लभ सुलभ हो जाता है। ये चार साधन हैं– श्रद्धा-संपत्ति, शील-संपत्ति, त्याग-संपत्ति और प्रज्ञा-संपत्ति।

क्या है श्रद्धा-संपत्ति?

किसी सम्यक संबुद्ध की बोधि के प्रति श्रद्धा जागती है, उनके गुणों के प्रति श्रद्धा जागती है– ऐसे हैं भगवान जो अरहंत हैं, सम्यक संबुद्ध हैं, विद्या और आचरण संपन्न हैं, सुगत हैं, लोक के ज्ञाता हैं, अनुपम हैं। गलत रास्ते चलने वालों को सही रास्ते चलाने में कुशल हैं। देव-मनुष्यों के शास्ता हैं, आचार्य हैं। बुद्ध हैं, भगवान हैं।

संप्रदायविहीन शुद्ध-धर्म पर श्रद्धा जागती है– धर्म स्पष्ट है, सुआख्यात है, सांदृष्टिक है, अकालिक है, कोई भी आये और इसे अनुभव करके देखे, उन्नति की ओर ले जाने वाला है और प्रत्येक समझदार व्यक्ति के लिए धारण कर सकने योग्य है।

संत समाज की पवित्रता के प्रति श्रद्धा जागती है– ये संत सुमार्गगामी हैं, ऋजुमार्गगामी हैं, ज्ञानमार्गगामी हैं, समीचीनमार्गगामी हैं; शील, समाधि और प्रज्ञा में प्रतिष्ठित होकर अनार्य से आर्य बन गये हैं, निर्वाणदर्शी हो

गये हैं। अतः संत हैं, निर्मल चित्त हैं। इसी कारण पूज्य हैं, वरेण्य हैं, आतिथेय्य हैं, दाक्षिणेय्य हैं। लोक में अनुपम पुण्य-क्षेत्र हैं।

सद्गृहस्थ जब श्रद्धा-संपत्ति से संपन्न होता है तब उसके चित्त की कठोरता दूर होती है, मृदुलता आती है। कटुता दूर होती है, मधुरता आती है। कुटिलता दूर होती है, ऋजुता, सरलता आती है। ऐसा व्यक्ति किसी को धोखा देकर संपदा नहीं बटोरता। धर्मपूर्वक ही संपदा अर्जित करता है और संपदा अर्जित करने में सफल होता है।

क्या है शील संपत्ति?

जो सद्गृहस्थ शील-संपन्न होता है, वह किसी प्राणी की हत्या नहीं करता, चोरी नहीं करता, व्यभिचार नहीं करता, झूठ नहीं बोलता, मादक पदार्थो का सेवन नहीं करता। शरीर या वाणी से कोई ऐसा दुष्कर्म नहीं करता जिसके कारण उसे निंदा का पात्र बनना पड़े। यों शील-संपन्न हुआ व्यक्ति अपयश का भागी नहीं होता। यशभागी ही होता है।

क्या है त्याग संपत्ति?

सद्गृहस्थ केवल संचय, संग्रह, परिग्रह के लिए ही धन अर्जित नहीं करता। वह मात्सर्य-रहित चित्त का जीवन जीता है। जो उपार्जित करता है उसका संविभाग करता है। उसे बांटता है। प्रसन्न चित्त से, खुले दिल से, खुले हाथों दान देता है। यही सद्गृहस्थ की दान-संपदा है, जिससे संपन्न होकर जब वह किसी सत्पुरुष को भोजन, वस्त्र, औषधि, आवास का दान देता है तो आयुबल का ही दान देता है जिसके फलस्वरूप उसे स्वयं आयुबल प्राप्त होता है। वह दीर्घजीवी होता है, स्वस्थ होता है।

क्या है प्रज्ञा-संपत्ति?

सद्गृहस्थ शील-सदाचार का जीवन जीता हुआ चित्त को एकाग्र करने का अभ्यास कर काया में कायानुपश्यना, वेदना में वेदनानुपश्यना, चित्त में चित्तानुपश्यना और धर्म में धर्मानुपश्यना करता है। यों अंतर्मुखी होकर विपश्यना का अभ्यास करता है तो देखता है कि किस प्रकार समय-समय

पर पांच आवरण-नीवरण बाधक बन कर उसके चित्त पर छाये जा रहे हैं, मानो पांच दुश्मन उसके सिर पर सवार हो गये हों।

कभी-कभी वह देखता है उसका चित्त विषम लोभ से अभिभूत होता जा रहा है, जिसकी वजह से जो नहीं करना चाहिए वह कर बैठता है। जो करना चाहिए वह नहीं कर पाता। अकरणीय के करने से और करणीय के न करने से उसके सुख व ऐश्वर्य की हानि होती है। यही होता है जब उसका चित्त द्वेष-दौर्मनस्य से भर उठता है अथवा आलस-प्रमाद से भर उठता है अथवा बेचैनी व आत्मग्लानि से भर उठता है अथवा शंका-संदेह से भर उठता है। विपश्यी गृहस्थ श्रावक समय-समय पर प्रकट होने वाले इन पांचों आवरण-नीवरणों को दुश्मनों के रूप में पहचानता है और समझता है कि ये चित्त के क्लेश हैं, मैल हैं। यों समझ कर उन्हें प्रयत्नपूर्वक दूर करता है। उन नीवरणों का उच्छेदन कर स्थूल-स्थूल सत्य का दर्शन करता हुआ उनका विभाजन, विघटन, विश्लेषण करता है और सूक्ष्म सत्यों का साक्षात्कार करता हुआ परम सत्य निर्वाण का दर्शन कर लेता है। अनार्य से आर्य बन जाता है। ऐसा सद्गृहस्थ महाप्रज्ञ कहलाता है। पृथुप्रज्ञ कहलाता है। प्रज्ञा-संपदा से संपन्न होता है।

प्रज्ञा के बल पर परम सत्य की ओर यात्रा करता हुआ वह अपने उन सभी कर्म-संस्कारों का क्षय कर लेता है जो कि अपायगति, अधोगति की ओर ले जाने वाले हैं। निर्वाण का साक्षात्कार कर गृहस्थ जब स्रोतापन्न हो जाता है, मुक्ति के स्रोत में पड़ जाता है तो अधोगति से पूर्णतया छुटकारा पा लेता है। उसके जो थोड़े से जन्म शेष रह जाते हैं वे ऊर्ध्वलोक के ही होते हैं। इस प्रकार प्रज्ञा में पुष्ट होकर गृहस्थ अपनी सद्गति के संबंध में निश्चित और आश्वस्त हो जाता है।

– अङ्गुत्तरनिकाय १.४.६१, पत्तकम्मसुत्त

यों श्रद्धा, शील, दान और प्रज्ञा द्वारा सद्गृहस्थ अपनी चारों लोकीय अभिलाषाएं सहज ही पूरी कर लेता है। दुर्लभ सुलभ कर लेता है।

सद्गृहस्थ के चार कर्तव्य

ऐसा आर्य सद्गृहस्थ जब उत्साह से, सत्प्रयत्न से, बाहुबल से, पसीने से, धर्मानुसार संपदा कमाता है तो उन्हें चार प्रकार से ही खर्च करता है। अपने चार कर्तव्य पूरे करता है।

(क) आर्य श्रावक उस संपत्ति से अपना भरण-पोषण करता है। अपने आपको स्वस्थ, सबल रखता है, सम्यक प्रकार से सुखी रखता है, धर्मपूर्वक सुखी रखता है। अपने माता-पिता, पुत्र-कलत्र, स्वजन-परिजन का भरण-पोषण करता है। नौकर-चाकरों, संगी-साथियों, मित्र-दोस्तों का भरण-पोषण करता है। उन सबको सबल स्वस्थ रखता है। उन्हें सम्यक प्रकार से सुखी रखता है, धर्मपूर्वक सुखी रखता है। प्राप्त समृद्धि-सुविधाओं के सम्यक परिभोग के क्षेत्र में यह उसका पहला कर्तव्य है, जिसे कि वह पूरा करता है।

(ख) आर्य-श्रावक श्रमपूर्वक और धर्मपूर्वक कमायी हुई संपदा का समुचित संरक्षण करता है। उसे आग से, पानी से, चोर से, शासक से, अप्रिय अनुचित उत्तराधिकारी से अथवा अन्य आपदाओं से बचाता है और उस संपदा द्वारा अपने आपको विभिन्न प्रकार की विपदाओं से बचाता है। आत्म-संरक्षण करता है। आत्म-कल्याण साधता है। प्राप्त समृद्धि-सुविधाओं के सम्यक परिभोग के क्षेत्र में यह उसका दूसरा कर्तव्य है, जिसे वह पूरा करता है।

(ग) आर्य श्रावक श्रमपूर्वक और धर्मपूर्वक कमाये हुए धन से पंचबलि-कर्म करता है। यहां बलि का अर्थ हत्या नहीं है, बल्कि पांच उचित क्षेत्रों में दान देना है, जैसे कि–

१. जातिबलि कर्म यानी अपने कुटुंब के लोगों को संतुष्ट प्रसन्न रखने के लिए यथासामर्थ्य देता है।

२. अतिथिबलि कर्म यानी घर आये हुए अतिथि को संतुष्ट प्रसन्न रखने के लिए यथासामर्थ्य देता है।

३. पूर्वप्रेतबलि कर्म यानी अपने पूर्व पूर्वजों के पुण्यार्थ यथासामर्थ्य दान देता है।

४. राजबलि कर्म यानी शासक को संतुष्ट प्रसन्न रखने के लिए यथाशक्ति देता है।

५. देवताबलि कर्म यानी कुल-देवता के सम्मान में यथाशक्ति दान देता है।

प्राप्त समृद्धि-सुविधाओं के सम्यक परिभोग के क्षेत्र में यह उसका तीसरा कर्तव्य है, जिसे वह पूरा करता है।

(घ) आर्य श्रावक श्रम व धर्मपूर्वक कमाया हुआ धन उन श्रमणों और ब्राह्मणों को दान करता है जो मद-प्रमाद से विरत हैं, क्षमाशील हैं, सदाचारी हैं जो अपने आपका दमन करते हैं, शमन करते हैं, जो अपने आपको सर्वथा विमुक्त करते हैं। इन सत्पुरुषों को दिया गया दान उसके कल्याण का कारण बनता है। प्राप्त समृद्धि सुविधाओं के सम्यक परिभोग के क्षेत्र में यह उसका चौथा कर्तव्य है, जिसे वह पूरा करता है।

– अङ्गुत्तरनिकाय १.४.६१, पत्तकम्मसुत्त

जो सद्गृहस्थ धर्मपूर्वक व श्रमपूर्वक कमायी हुई अपनी संपदा का इन चार प्रकार से सम्यक परिभोग करता है उसी के लिए यह कहा जा सकता है कि उसने अपनी संपदा का सदुपयोग किया। संपत्ति-समृद्धि काल के अवसर का समुचित लाभ उठाया। उसे पुण्य में लगाया। उचित पात्र के लिए, उचित विधि से उसका व्यय किया। परंतु इन चारों को छोड़कर अन्य किसी प्रकार से व्यय करता है तो यही कहा जायगा कि उसने अपना अर्जित धन अनुचित क्षेत्र में खर्च किया। अनुचित पात्र के लिए, अनुचित विधि से नष्ट ही किया।

गृही साधको! धर्मपूर्वक, श्रमपूर्वक संपदा कमा कर उसका धर्मपूर्वक समुचित सदुपयोग ही करें। अनुचित दुरूपयोग न करें। इसी से सद्गृहस्थ का लोक और परलोक सुधरता है, सुखद होता है, मंगलमय होता है। यों अपना सही सुख साधें! सही मंगल साधें!

गृही आचार-संहिता

नमस्कार किसको करें?

मगध देश की राजधानी राजगृह।

श्रेष्ठीपुत्र सिगाल सुबह-सुबह उठ कर नगर के बाहर गया। भीगे वस्त्रों और भीगे केश से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नीचे और ऊपर छहों दिशाओं की ओर हाथ जोड़-जोड़कर नमस्कार करने लगा। उन दिनों की अनेक पूजन-विधियों और कर्मकांडों में से यह भी एक रहा होगा। उसी समय भगवान वेणुवन विहार से निकले और राजगृह नगर में भिक्षाटन के लिए चले। रास्ते में श्रेष्ठीपुत्र सिगाल को छहों दिशाओं की ओर नमस्कार करते हुए देखा तो पूछा – "गृहपति-पुत्र! यह क्या कर रहे हो?"

सिगाल ने उत्तर दिया – "भंते! भगवान! दिशाओं को नमस्कार कर रहा हूं। मेरे पिता ने मरते समय आदेश दिया था कि दिशाओं को नमस्कार करना। अतः पिता के अंतिम आदेश का पालन कर रहा हूं।"

"गृहपति-पुत्र! आर्यधर्म में इस प्रकार छहों दिशाओं को नमस्कार नहीं किया जाता।" भगवान ने कहा।

"अच्छा हो, भगवान! कृपया मुझे आर्यधर्म का ज्ञान करायें।"

श्रेष्ठीपुत्र सिगाल की प्रार्थना पर उस समय भगवान ने जो उपदेश दिया, वह केवल सिगाल के लिए ही नहीं, बल्कि सभी गृहस्थों के लिए अत्यंत कल्याणकारी है। गृहस्थों के लिए यह आचार-संहिता शुद्ध आर्यधर्म की भांति सार्वजनीन है, सार्वदेशिक है, सार्वकालिक है। आज के किसी भी सद्गृहस्थ के लिए उतनी ही उपादेय है, जितनी कि २६०० वर्ष पूर्व सिगाल के लिए थी।

आओ! भगवान के इस मंगल उपदेश को समझें।

भगवान ने कहा– गृहपतिपुत्र! आर्य गृहस्थ चार कर्म-क्लेशों से दूर रहता है। चार प्रकार की दूषित चेतना पर आधारित पाप कर्म त्यागता है। छह प्रकार के विनाशकारी आचरणों से बचता है। इस भांति १४ प्रकार से संयमित जीवन जी कर छहों दिशाओं को आच्छादित कर पूर्णतया सुरक्षित रहता है और अपने इहलोक और परलोक दोनों को सुधारता है। इस जीवन को सफल सार्थक कर लेता है और शरीर छोड़ कर मरने पर सुगति प्राप्त करता है।

"हत्या, चोरी, व्यभिचार और असत्य-भाषण – ये चारों कर्म-क्लेश हैं, मैले कर्म हैं। ऐसे कर्म जिनसे क्लेश ही बढ़ता है।"

"ये चारों वाणी और शरीर के दुष्कर्म हैं जिनसे व्यक्ति अन्य प्राणियों का सुख छीनता है, उन के दुःख का कारण बनता है और परिणामस्वरूप स्वयं भी दुःखी रहता है।"

"इन चारों से विरत होकर एक सद्गृहस्थ साधना द्वारा अपने चित्त को वश में ही नहीं करता बल्कि उसे निर्मल बनाता है, विकारविहीन करता है और इस प्रकार राग, द्वेष, मोह और भय इन चारों दूषित मनोचेतनाओं पर आधारित कोई भी पाप कर्म नहीं करता।"

"इन आठ प्रकार के दोषों से विरत रहने वाला सद्गृहस्थ बुद्धिपूर्वक अपनी संचित धन-संपदा की सुरक्षा करता है। धन-संपदा के नष्ट हो जाने के छः कारणों से दूर रहता है। धन विनाश के ये छः कारण हैं–

(१) मद्य-सेवन (२) कुसमय गली-कूंचों की सैर (३) खेल-तमाशों का सेवन (४) जुए का सेवन (५) पाप-मित्रों की कुसंगति (६) आलस।

समझदार गृहस्थ इस बात को बखूबी समझता है कि ये सभी बुरी आदतें धन-विनाश और पतन का कारण होती हैं।

धन विनाश के छः कारण

(१) मद्य-सेवन के व्यसन के कारण –

अ) आंखों के सामने देखते-देखते धन बर्बाद होता है।

आ) विग्रह-कलह बढ़ता है।

इ) नाना प्रकार के रोगों का दरवाजा खुलता है।

ई) अपयश होता है।

उ) निर्लज्जता आती है।

ऊ) प्रज्ञा क्षीण होती है।

(२) कुसमय गली-कूचों की सैर करने की आदत के कारण –

अ) स्वयं असुरक्षित होता है।

आ) घर पर स्त्री-पुत्र असुरक्षित होते हैं।

इ) धन-संपदा असुरक्षित होती है।

ई) किसी अन्य द्वारा किये गये पाप-कर्मो का स्वयं संदेहभाजन बनता है।

उ) झूठे लांछन लगते हैं।

ऊ) वस्तुतः अनेक दुःखकारक दुष्कर्म कर भी लिये जाते हैं।

(३) खेल-तमाशे के व्यसन के कारण –

इस परेशानी में ही सदा आकुल-व्याकुल रहता है कि आज कहां नाच, कहां गीत, कहां वाद्य, कहां कथावार्ता, कहां करताल और कहां मृदंग का आयोजन है?

नित नये नाच-गाने, खेल-तमाशे, सिनेमा-थियेटर, नाइट क्लबों में जाते रहने का व्यसन धन, चरित्र और स्वास्थ्य तीनों का नाश करता है।

(४) जुए के व्यसन के कारण –

अ) जीते तो बैर उत्पन्न होता है।

आ) हारे तो धन खोने का शोक उत्पन्न होता है।

इ) देखते-देखते आंखों के सामने धन की हानि होती है।

ई) उसके वचन का समाज में कोई विश्वास नहीं करता।

उ) अच्छे मित्रों और साथियों द्वारा तिरस्कृत होता है।

ऊ) अविवाहित हो तो कोई पिता अपनी कन्या विवाह में नहीं देना चाहता, यह जानते हुए कि यह अपनी पत्नी और संतान का भरण-पोषण नहीं कर सकेगा।

(५) पापी मित्रों की कुसंगति के कारण –

कोई भला आदमी उसका साथ नहीं देता। केवल धूर्त्त, व्यभिचारी, पियक्कड़, गुंडे, धोखेबाज और लंपट ही उसके संगी-साथी होते हैं।

दुर्जनों की संगति और सज्जनों की असंगति से संचित संपदा गँवाता है और नाना प्रकार के दु:खों का भागी होता है।

(६) आलस का गुलाम होने के कारण –

अ) बहुत सर्दी है।

आ) बहुत गर्मी है।

इ) बहुत देर हो गई।

ई) बहुत सबेरा है।

उ) बहुत भूखा हूं।

ऊ) बहुत खा लिया है।

ऐसे बहाने ढूंढ कर करणीय काम नहीं करता। परिणाम स्वरूप अप्राप्त संपदा प्राप्त नहीं कर पाता। प्राप्त संपदा गँवा देता है।

सही मित्र की पहचान

संपत्ति-विनाश के इन छः कारणों में पाप मित्रों की कुसंगति वाले पांचवें कारण को भगवान ने बहुत महत्व दिया। सचमुच अक्सर सत्संगति के अभाव में और कुसंगति में पड़ जाने के कारण ही गृही-पुत्र नाना प्रकार के दु:खदायी व्यसनों का गुलाम बन जाता है। इसलिए उसे यह जानना आवश्यक है कि कौन व्यक्ति मित्र के रूप में उसका बैरी है और कौन सही मित्र है।

भगवान ने कहा, “गृहपति-पुत्र! इन चारों को मित्र के रूप में बैरी समझना चाहिए –

(१) **परधन-हारक मित्र –** ऐसा लोभी व्यक्ति –

अ) पराया धन अपहरण करने के उद्देश्य से ही दोस्ती गांठता है।
आ) थोड़ा देकर बहुत हथियाना चाहता है।
इ) ऐसे काम करता है जिनसे नाना प्रकार की विपत्तियां उत्पन्न होती हैं।
ई) अपना मतलब साधने के लिए संगत करता है।

(२) **बातूनी मित्र –** ऐसा व्यक्ति किसी काम में नहीं आता, केवल बातें ही बनाता है। वह –

अ) भूतकाल में सहायता करने के लिए कितना आतुर था, इस संबंध में झूठी डींग हांकता है।

आ) भविष्य में काम पड़े तो किस प्रकार सहायता करेगा, इस संबंध में बढ़ा-चढ़ाकर बातें करता है।

इ) वर्तमान के संबंध में हवाई पुल बांधता है।
ई) परंतु सचमुच काम आ पड़ने पर मुँह छिपाता है।

(३) **खुशामदी मित्र –** ऐसा व्यक्ति –

अ) बुरे काम में भी हां में हां मिलाता है।
आ) अच्छे काम में भी हां में हां मिलाता है।
इ) सामने प्रशंसा करता है।
ई) पीठ-पीछे निंदा करता है।

(४) **विनाश-सहायक मित्र –** ऐसा व्यक्ति –

अ) नशे-पते के व्यसन में फँसने में साथ देता है।
आ) बेवक्त गली-कूचों में आवारागर्दी करने में साथ देता है।
इ) खेल-तमाशे में मशगूल रहने में साथ देता है।

ई) प्रमादकारी जुए के व्यसन में साथ देता है।

भगवान ने कहा कि इन चारों श्रेणी के व्यक्तियों को मित्र के बाने में बैरी जानकर इनकी संगत शीघ्रातिशीघ्र छोड़ने में ही भलाई है।

इसी प्रकार चार प्रकार के सही मित्रों को अपना हितैषी मानकर उनकी संगत करने में भलाई है –

(१) **उपकारी मित्र –** ऐसा व्यक्ति –

अ) प्रमत्त हुए मित्र को संकट से बचाता है।

आ) प्रमत्त हुए मित्र की संपदा नष्ट होने से बचाता है।

इ) विपत्ति में पड़े मित्र को शरण देता है।

ई) काम पड़ने पर मित्र को आवश्यकता से दुगुना देता है।

(२) **समान सुख-दुःखी मित्र –** ऐसा सुख-दुख का साथी –

अ) अपनी गोपनीय बात भी मित्र को बताता है।

आ) मित्र की गोपनीय बात औरों से गुप्त रखता है।

इ) विपत्ति में मित्र का साथ नहीं छोड़ता।

ई) आवश्यकता पड़ने पर मित्र के लिए प्राण तक देने को तत्पर रहता है।

(३) **हितैषी मित्र –** भले-बुरे को आख्यात करने वाला ऐसा व्यक्ति –

अ) मित्र को पाप से बचाता है।

आ) मित्र को पुण्य में लगाता है।

इ) मित्र को अश्रुत धर्म सुनाता है।

ई) मित्र को सद्गति का मार्ग बताता है।

(४) **अनुकंपक मित्र –** सहानुभूति रखने वाला ऐसा व्यक्ति –

अ) मित्र के निर्धन होने पर प्रसन्न नहीं होता।

आ) मित्र के धनी होने पर प्रसन्न होता है।

इ) मित्र की निंदा करने वाले को रोकता है।

ई) मित्र की प्रशंसा करने वाले को बढ़ावा देता है।

यों उपरोक्त चार प्रकार के कुमित्रों का साथ छोड़कर, चार प्रकार के सुमित्रों की संगत करने वाला गृही विपत्ति से बचता है, संपत्तिसंपन्न होता है।

वास्तविक छः दिशाएं

तदनंतर भगवान ने श्रेष्ठीपुत्र सिगाल को आर्य-धर्म में छः दिशाओं की सही पूजन-विधि सिखायी-समझायी। कोई व्यक्ति किस प्रकार दिशाओं को धर्म से आच्छादित कर यानी **धर्मपूर्वक जीवन जीकर** सभी दिशाओं में अपनी सुरक्षा स्थापित करता है।

छः दिशाएं क्या हैं?

माता-पिता को पूर्व दिशा, गुरुजनों को दक्षिण दिशा, पुत्र-कलत्र को पश्चिम दिशा, मित्र-साथियों को उत्तर दिशा, नौकर-चाकरों को नीचे की दिशा और श्रमण-ब्राह्मणों को ऊपर की दिशा जाननी चाहिए।

१. माता-पिता की सेवा

पुत्र को **पांच प्रकार** से माता-पिता की सेवा करनी चाहिए–

(क) इन्होंने मेरा भरण-पोषण किया है, इसलिए मुझे इनका भरण-पोषण करना चाहिए।

(ख) इन्होंने मेरे प्रति कर्तव्य पूरा किया है, मुझे भी इनके प्रति कर्तव्य पूरा करना चाहिए।

(ग) इन्होंने कुल-वंश कायम रखा है, मुझे भी कुल-वंश कायम रखना चाहिए।

(घ) इन्होंने मुझे दायद (विरासत) दी है। मुझे भी दायद प्रतिपादन करना चाहिए।

(ङ) मृत पितरों के पुण्यार्थ श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिए।

यों पांच प्रकार से सेवित हो, माता-पिता **पुत्र पर** पांच प्रकार से अनुकंपा करते हैं–

(च) उसे पाप कर्मों से बचाते हैं।

(छ) उसे पुण्य कर्मों में लगाते हैं।

(ज) उसे शिल्प सिखाते हैं।

(झ) योग्य जीवन-संगिनी से उसका संबंध कराते हैं।

(ञ) समय पाकर उसे दायद निष्पादन करते हैं।

इन पांच बातों से सेवित **माता-पिता रूपी पूर्व-दिशा** पांच प्रकार से **पुत्र पर** अनुकंपा करती है और इस प्रकार गृही के लिए पूर्व दिशा प्रतिच्छन्न होती है, ढकी होती है, योगक्षेमपूर्ण, भयरहित होती है।

२. गुरुजनों की सेवा

शिष्य को पांच प्रकार से **आचार्य की सेवा** करनी चाहिए –

(क) तत्परतापूर्वक उठकर।

(ख) आवश्यकता के समय उपस्थित रहकर।

(ग) सुश्रूषा कर के।

(घ) परिचर्या कर के।

(ङ) सत्कारपूर्वक विद्या सीखकर।

यों पांच प्रकार से सेवित हो **आचार्य शिष्य पर** पांच प्रकार से अनुकंपा करते हैं –

(च) उसे सुविनीत करते हैं।

(छ) उसे भली प्रकार सुशिक्षा ग्रहण करना सिखाते हैं।

(ज) विद्या-शिल्प लुप्त न हो, इस योग्य पात्र द्वारा कायम रहे, इस उद्देश्य से उसे अच्छी तरह आख्यात करते हैं।

(झ) संगी-साथियों में उसकी प्रशंसा कर प्रोत्साहन देते हैं।

(ञ) हर दिशा में सुरक्षित रह सकने के अनुकूल उसे प्रशिक्षित करते हैं।

उपरोक्त पांच प्रकार से शिष्य द्वारा सेवित हो **दक्षिण दिशा रूपी आचार्य** उस पर पांच प्रकार से अनुकंपा करते हैं और यों दक्षिण दिशा प्रतिच्छन्न, छाई हुई, ढकी, सुरक्षित, क्षेमयुक्त और भय-विहीन होती है।

३. पत्नी की सेवा

पति को पांच प्रकार से पत्नी की सेवा करनी चाहिए –

(क) उसका सन्मान करके।

(ख) उसे अपमानित न करके।

(ग) व्यभिचार न करके।

(घ) उसे ऐश्वर्य-प्रभुत्व प्रदान करके।

(ङ) उसे अलंकार-आभूषण प्रदान करके।

यों पांच प्रकार से सेवित हो पत्नी पांच प्रकार से **पति पर** अनुकंपा करती है –

(च) गृह-संचालन के कर्तव्य भली प्रकार पूरे करती है।

(छ) स्वजन-परिजन, नौकर-चाकरों को भली प्रकार प्रसन्न-संतुष्ट रखती है।

(ज) व्यभिचारिणी नहीं होती।

(झ) पति द्वारा अर्जित धन की सुरक्षा करती है।

(ञ) सभी घरेलू कार्यों में निरालस व दक्ष होती है।

यों पांच प्रकार से पति द्वारा सेवित होने पर **पश्चिम दिशा रूपी पत्नी** पति पर पांच प्रकार से अनुकंपा करती है और यों पश्चिम दिशा प्रतिच्छन्न, छाई हुई, ढकी, सुरक्षित, भयविहीन रहती है।

४. मित्र की सेवा

पांच प्रकार से मित्र की सेवा करनी चाहिए –

(क) देकर।

(ख) प्रिय वचन बोलकर।

(ग) भलाई कर के।

(घ) समानता का भाव प्रकट कर के।

(ङ) वचन-पालन द्वारा विश्वास उत्पन्न कर के।

यों पांच प्रकार से सेवित हो **मित्र-साथी** बदले में कुल-पुत्र गृही पर पांच प्रकार से अनुकंपा करते हैं।

(च) प्रमत्त हो जाय तो उसकी रक्षा करते हैं।

(छ) प्रमत्त हो जाय तो उसके धन की रक्षा करते हैं।

(ज) संकट के समय उसे शरण देते हैं।

(झ) विपत्ति में उसका साथ नहीं छोड़ते।

(ञ) उसके परिवार के अन्य लोगों का भी आदर करते हैं।

यों पांच प्रकार से सेवित हो **उत्तर दिशा रूपी मित्र-संगी** बदले में पांच प्रकार से अनुकंपा करते हैं। इस प्रकार उत्तर दिशा प्रतिच्छन्न, छाई हुई, ढकी, सुरक्षित, भयविहीन होती है।

५. नौकर की सेवा

पांच प्रकार से मालिक को नौकर-चाकर की सेवा करनी चाहिए–

(क) उसे शक्ति के अनुकूल ही काम देकर।

(ख) उसे भोजन-वेतन देकर।

(ग) रोगी हो जाय तो उसकी सुश्रूषा करके।

(घ) उत्तम सरस भोजन में उसे साथी बनाकर।

(ङ) उसे समय पर छुट्टी देकर।

पांच प्रकार से सेवित होकर सेवक **मालिक पर** पांच प्रकार से अनुकंपा करते हैं–

(च) मालिक से पहले उठनेवाले होते हैं।

(छ) पीछे सोनेवाले होते हैं।

(ज) चोरी नहीं करते, दिया हुआ ही लेते हैं।

(झ) काम अच्छी प्रकार करनेवाले होते हैं।

(ञ) यश-कीर्ति फैलानेवाले होते हैं।

यों पांच प्रकार से सेवित हो, **निचली दिशा रूपी सेवक** मालिक पर पांच प्रकार से अनुकंपा करते हैं। इस प्रकार निचली दिशा प्रतिच्छन्न, छाई हुई, ढकी, सुरक्षित, क्षेमपूर्ण, भयविहीन रहती है।

६. श्रमण-ब्राह्मण की सेवा

पांच प्रकार से कुल-पुत्र को श्रमण-ब्राह्मण की सेवा करनी चाहिए–

(क) मैत्रीभावपूर्ण शारीरिक कर्म से।

(ख) मैत्रीभावपूर्ण वाचिक कर्म से।

(ग) मैत्रीभावपूर्ण मानसिक कर्म से।

(घ) खुले दिल से अगवानी करके।

(ङ) लोकीय आवश्यकताओं की पूर्ति करके।

पांच प्रकार से सेवित श्रमण-ब्राह्मण छः प्रकार से कुल-पुत्रों पर अनुकंपा करते हैं–

(च) पाप कर्मों से बचाते हैं।

(छ) कुशल कर्मों में लगाते हैं।

(ज) कल्याण चाहते हुए अनुकंपा करते हैं।

(झ) अश्रुत धर्म सुनाते हैं।

(ञ) श्रुत धर्म का शोधन कर पुष्ट करते हैं।

(ट) सद्गति का रास्ता बताते हैं।

यों पांच प्रकार से सेवित **ऊपरी दिशा रूपी श्रमण-ब्राह्मण** संत सद्गृहस्थ पर छः प्रकार से अनुकंपा करते हैं और इस प्रकार ऊपर की दिशा प्रतिच्छन्न, छाई हुई, ढकी, सुरक्षित क्षेमपूर्ण भयविहीन होती है।

सद्गृहस्थ सद्धर्म की आचार-संहिता को धारण कर इस प्रकार **छहों दिशाओं से भयमुक्त होता है।**

भगवान का यह मंगल उपदेश सुनकर श्रेष्ठि-पुत्र सिगाल निहाल हुआ। परंपरा से जड़ीभूत हुई निष्प्राण रूढ़ियों से मुक्ति पाकर सद्धर्म के जीवंत व्यवहार-पथ पर चलकर अपना इहलोक और परलोक दोनों सुधार सका।

– दीघनिकाय ३.२४२–२७४, सिङ्गालसुत्त

आओ, गृही साधको! हम भी इसी प्रकार इस मंगलमयी गृही आचार-संहिता को धारण कर अपना इहलोक और परलोक दोनों सुधारें और सही माने में मंगललाभी हों।

आदर्श गृहस्थ

हितकारी सत्पुरुष

यदि किसी कुल में सत्पुरुष जन्म ग्रहण करता है तो वह बहुत जनों के अर्थ, हित तथा सुख के लिए होता है – माता-पिता के अर्थ, हित तथा सुख के लिए होता है; स्त्री-बच्चे के अर्थ, हित तथा सुख के लिए होता है; दास कर्मकर लोगों के अर्थ, हित तथा सुख के लिए होता है; मित्र-अमात्यों के अर्थ, हित तथा सुख के लिए होता है; पूर्व-प्रेतों (मृत पूर्वजों) के अर्थ, हित तथा सुख के लिए होता है; राजा के अर्थ, हित तथा सुख के लिए होता है; देवताओं के अर्थ, हित तथा सुख के लिए होता है तथा श्रमण-ब्राह्मणों के अर्थ, हित तथा सुख के लिए होता है।

हितसुखमय गृहस्थ

एक समय भगवान कोळिय (प्रदेश) में कक्करवत्त नामक कोळिय निगम में विहार कर रहे थे। तब कोळिय-पुत्र दीर्घजाणु जहां भगवान थे, वहां गया। पास जाकर, अभिवादन कर, एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए कोळिय-पुत्र दीर्घजाणु ने भगवान से निवेदन किया – “भंते! हम गृहस्थ हैं, काम-भोगी हैं, पुत्र, (स्त्री) की बाधाओं सहित (घर में) रहते हैं, काशी के चंदन का लेप करते हैं, माला गंधलेप का धारण करते हैं, चांदी-सोने को उपयोग में लाते हैं। भंते भगवान! हमको ऐसे धर्म का उपदेश करें जो हमारे लिए इस लोक में हितकर हो, सुखकर हो, परलोक में हितकर हो, सुखकर हो।”

“हे व्याघ्रपाद! ये चार धर्म ऐसे हैं जो कुल-पुत्र के इहलौकिक हित तथा इहलौकिक सुख के कारण होते हैं। कौन-से चार? **उत्थान-सम्पदा, आरक्षा-सम्पदा, कल्याण-मित्रता तथा सम-जीविता।**

व्याघ्रपाद! **उत्थान-सम्पदा** किसे कहते हैं? व्याघ्रपाद! कोई कुल-पुत्र किसी भी जीविका के साधन का उपयोग करने वाला हो, चाहे कृषि हो, चाहे वाणिज्य हो, चाहे गो-पालन हो, चाहे धनुर्विद्या हो, चाहे राजकीय चाकरी हो, अथवा कोई शिल्प हो – उसमें वह दक्ष होता है, आलस्यरहित होता है, उसका विश्लेषण करने में, उसका उपयोग करने में संलग्न रहता है, उसे पूरा करने में, उसका संविधान करने में समर्थ होता है। व्याघ्रपाद! यही **उत्थान-सम्पदा** है।

व्याघ्रपाद! **आरक्षा-सम्पदा** किसे कहते हैं? व्याघ्रपाद! एक कुल-पुत्र उत्थान-वीर्य से, बाहुबल का उपयोग करके, पसीना बहाकर, धर्मानुसार ऐश्वर्य की प्राप्ति करता है। वह इसकी सावधानी बरतता है कि उसके ऐश्वर्य को न राजागण छीन कर ले जायँ, न चोर चुरा कर ले जायँ, न आग जलाये, न पानी बहाये और न ही इस पर कोई अप्रिय उत्तराधिकारी अधिकार जमा ले। व्याघ्रपाद! यह **आरक्षा-सम्पदा** है।

व्याघ्रपाद! **कल्याण-मित्रता** किसे कहते हैं? व्याघ्रपाद! किसी भी गांव या निगम में कोई कुल-पुत्र रहता है और उसमें जो गृहपति वा गृहपति-पुत्र ऐसे होते हैं जो चाहे अल्पव्यस्क हों और चाहे अधिक आयु के हों, किंतु शीलवृद्ध होते हैं – श्रद्धावान, सदाचारी, त्यागी, प्रज्ञावान। वह उनके साथ उठता-बैठता है, बातचीत करता है, चर्चा करता है। जैसे वे श्रद्धावान होते हैं, उनसे श्रद्धा का पाठ सीखता है... जैसे वे शीलवान होते हैं, उनसे शील का पाठ सीखता है... जैसे वे त्यागी होते हैं, उनसे त्याग का पाठ सीखता है... जैसे वे प्रज्ञावान होते हैं, उनसे प्रज्ञा का पाठ सीखता है। वह उनके साथ उठता-बैठता है, बातचीत करता है, चर्चा करता है। व्याघ्रपाद! उसे **कल्याण-मित्रता** कहते हैं।

व्याघ्रपाद! **सम-जीविता** किसे कहते हैं? व्याघ्रपाद! एक कुल-पुत्र अपनी भोग संपत्ति की आय और व्यय की जानकारी के अनुसार सम-जीवन व्यतीत करता है। न बहुत ऊंचा-स्तर, न बहुत नीचा-स्तर; ऐसे मेरी आय व्यय से अधिक रहेगी, मेरा व्यय आय से अधिक न होगा।

व्याघ्रपाद! जैसे कोई तुलाधार (तराजू वाला) या तुलाधार का शिष्य तुला हाथ में पकड़ता है तो जानता है कि इतनी कमी है या इतनी अधिकता है। इसी प्रकार व्याघ्रपाद! एक कुल-पुत्र अपनी (भोग-संपत्ति) की आय और व्यय के अनुसार सम-जीवन व्यतीत करता है। न बहुत ऊंचा-स्तर, न बहुत नीचा-स्तर; ऐसे मेरी आय व्यय से अधिक रहेगी, ऐसे मेरा व्यय आय से अधिक न होगा। व्याघ्रपाद! यदि यह कुल-पुत्र अल्प आय वाला होता हुआ भी जीवन का स्तर ऊंचा रखता है तो लोग उसके बारे में कहते हैं कि यह कुल-पुत्र गूलर खाने के समान ऐश्वर्य का भोग करता है अर्थात खाने से भी अधिक बिखेरता है। व्याघ्रपाद! यदि यह कुल-पुत्र अधिक आय वाला होता हुआ भी जीवन का स्तर बहुत नीचा रखता है तो लोग उसके बारे में कहते हैं कि यह अनाथ-मरण मरने वाला है। यानी अपनी अर्जित सम्पत्ति का नाथ होते हुए भी उसका उचित उपयोग न कर सकने के कारण उसका स्वामी न रहता हुआ ही मृत्यु को प्राप्त होता है। लेकिन व्याघ्रपाद! जब एक कुल-पुत्र अपनी भोग (संपत्ति) की आय और व्यय के अनुसार सम-जीवन व्यतीत करता है – न बहुत ऊंचा-स्तर, न बहुत नीचा-स्तर, ऐसे मेरी आय व्यय से अधिक रहेगी, पर मेरा व्यय आय से अधिक न होगा। व्याघ्रपाद! इसे **सम-जीविता** कहते हैं।

व्याघ्रपाद! इस प्रकार उत्पन्न भोग के साधनों के जाने (नाश) के चार रास्ते हैं – वेश्यागामी होना, शराबी होना, जुआरी होना, कुसंगति में रहना। जैसे किसी बड़े तालाब में पानी आने के चार रास्ते हों और चार पानी जाने के रास्ते हों। कोई आदमी पानी आने के रास्तों को बंद करदे; किंतु पानी जाने के रास्तों को खोल दे और वर्षा भली प्रकार न हो; तो हे व्याघ्रपाद! उस बड़े तालाब की हानि की ही उम्मीद रखनी चाहिए, वृद्धि की नहीं। इसी तरह व्याघ्रपाद! इस प्रकार उत्पन्न भोग के साधनों के जाने (नाश) के चार रास्ते हैं – वेश्यागामी होना, शराबी होना, जुआरी होना, कुसंगति में रहना।

व्याघ्रपाद! इसी प्रकार उत्पन्न भोग के साधनों के आगमन के चार रास्ते हैं – वेश्यागामी न होना, शराबी न होना, जुआरी न होना, अच्छी संगति में रहना। व्याघ्रपाद! जैसे किसी बड़े तालाब में चार पानी आने के रास्ते हों

और चार पानी जाने के रास्ते हों। कोई आदमी पानी जाने के रास्तों को बंद कर दे, पानी आने के रास्तों को खोल दे और वर्षा भली प्रकार हो तो हे व्याघ्रपाद! उस बड़े तालाब की वृद्धि की ही उम्मीद रखनी चाहिए, हानि की नहीं। इसी तरह व्याघ्रपाद! इस प्रकार उत्पन्न भोग के साधनों के आगमन के चार रास्ते हैं – वेश्यागामी न होना, शराबी न होना, जुआरी न होना, अच्छी संगति में रहना। हे व्याघ्रपाद! ये चार धर्म ऐसे हैं जो कुल-पुत्र के इहलौकिक हित तथा इहलौकिक सुख के लिए होते हैं।

व्याघ्रपाद! ये चार धर्म ऐसे हैं जो कुल-पुत्र के चार पारलौकिक हित तथा पारलौकिक सुख के लिए होते हैं। कौन-से चार? **श्रद्धा-सम्पदा, शील-सम्पदा, त्याग-सम्पदा तथा प्रज्ञा-सम्पदा।**

व्याघ्रपाद! **श्रद्धा-सम्पदा** किसे कहते हैं? व्याघ्रपाद! कुल-पुत्र श्रद्धावान होता है, वह तथागत की बोधि (ज्ञान प्राप्ति) के प्रति श्रद्धावान होता है – "वे भगवान अरहंत हैं, सम्यक संबुद्ध हैं, विद्या तथा आचरण से युक्त हैं, सुगत हैं, लोकविदु हैं, अनुपम हैं, (दुष्ट) पुरुषों का दमन करने वाले सारथी हैं, देवताओं तथा मनुष्यों के शास्ता हैं, शिक्षक हैं, बुद्ध भगवान हैं।" व्याघ्रपाद! इसे श्रद्धा-सम्पदा कहते हैं।

व्याघ्रपाद! **शील-सम्पदा** किसे कहते हैं? व्याघ्रपाद! कुल-पुत्र प्राणी-हिंसा से, चोरी से, व्यभिचार से, मिथ्या भाषण से और सुरा-मेरय्य आदि नशीली वस्तुओं के सेवन से विरत होता है। व्याघ्रपाद! इसे शील-सम्पदा कहते हैं।

व्याघ्रपाद! **त्याग-सम्पदा** किसे कहते हैं? व्याघ्रपाद! कुल-पुत्र मल-मात्सर्यरहित चित्त से गृहवास करता है, त्यागी होता है, दानशील, खुले हाथ वाला, याचक को देने तथा बांटने वाला। व्याघ्रपाद! इसे त्याग-सम्पदा कहते हैं।

व्याघ्रपाद! **प्रज्ञा-सम्पदा** किसे कहते हैं? व्याघ्रपाद! कुल-पुत्र प्रज्ञावान होता है, उदय और अस्त का अनुभव कराने वाली, अविद्या के आवरण को

बींधने वाली, सम्यक रूप से दुःख का क्षय कराने वाली आर्य प्रज्ञा से युक्त होता है। व्याघ्रपाद! यह प्रज्ञा-सम्पदा है। व्याघ्रपाद! ये चारों धर्म कुल-पुत्र के पारलौकिक हित तथा पारलौकिक सुख के कारण होते हैं।

उट्ठाता कम्मधेय्येसु, अप्पमत्तो विधानवा।
समं कप्पेति जीविकं, सम्भतं अनुरक्खति॥

सद्धो सीलेन सम्पन्नो, वदञ्ञू वीतमच्छरो।
निच्चं मग्गं विसोधेति, सोत्थानं सम्परायिकं॥

इच्चेते अट्ठ धम्मा च, सद्धस्स घरमेसिनो।
अक्खाता सच्चनामेन, उभयत्थ सुखावहा॥

दिट्ठधम्महितत्थाय, सम्परायसुखाय च।
एवमेतं गहट्ठानं, चागो पुञ्ञं पवड्ढति॥

– काम करने में उत्साहयुक्त, अप्रमादी व्यवस्थापक, सम-जीवन व्यतीत करने वाला तथा अर्जित संपत्ति का अनुरक्षण करने वाला। श्रद्धावान, सदाचारी, प्रज्ञावान तथा त्यागी होकर वह नित्य पारलौकिक मार्ग को विशुद्ध करता है। इस प्रकार तथागत द्वारा, घर में रहने वाले श्रद्धावान व्यक्ति के इहलौकिक तथा पारलौकिक सुख के लिए आठ धर्म बताये गये हैं। इस प्रकार गृहस्थों का त्याग उनकी पुण्य-वृद्धि का कारण होता है।

– अङ्गुत्तरनिकाय ३.८.५४–५५, दीघजाणुसुत्त

सुखी गृहपति

तब अनाथपिंडिक गृहपति जहां भगवान थे, वहां गया; पास जाकर भगवान को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए अनाथपिंडिक गृहपति को भगवान ने यह कहा– **“गृहपति! ये चार सुख हैं** जो कामभोगी गृहस्थ को समय-समय पर प्राप्त होते हैं। कौन-से चार? (भोग्य-पदार्थो के) होने का सुख, भोगने का सुख, ऋणी न होने का सुख तथा निर्दोष होने का सुख।

गृहपति! **(भोग्य-पदार्थो के) होने का सुख कौन-सा सुख है?** गृहपति!

किसी कुल-पुत्र के घर में ऐसे भोग्य पदार्थ होते हैं जो उसके उत्साह और प्रयत्न से कमाया होता है, बाहुबल से कमाया होता है, पसीने से कमाया होता है, तथा धर्मानुसार कमाया होता है। उसे इस बात का सुख होता है, आनंद होता है कि उसके पास भोग्य पदार्थ हैं जिन्हें उसने उत्साह और प्रयत्न से कमाया है, बाहुबल से कमाया है, पसीने से कमाया है, तथा धर्मानुसार कमाया है। गृहपति! यही भोग्य-पदार्थों के होने का सुख कहलाता है।

गृहपति! **(भोग्य-पदार्थों) के भोगने का सुख कौन-सा होता है?** गृहपति! एक कुल-पुत्र ऐसे भोग्य-पदार्थों को भोगता है जिन्हें वह उत्साह और प्रयत्न से कमाता है, बाहुबल से कमाता है, पसीने से कमाता है, तथा धर्मानुसार कमाता है, और वह उनसे पुण्य-कर्म करता है। वह जब ऐसे भोग्य-पदार्थों को, जो उसके उत्साह और प्रयत्न से कमाया होता है, बाहुबल से कमाया होता है, पसीने से कमाया होता है, तथा धर्मानुसार कमाया होता है, भोगता है और उनसे पुण्य करता है तो उसे इससे सुख प्राप्त होता है, उसे इससे आनंद प्राप्त होता है। गृहपति! यही भोग्य-पदार्थों के भोगने का सुख है।

गृहपति! **ऋणी न होने का सुख कौन-सा है?** गृहपति! एक कुल-पुत्र को किसी का कुछ नहीं देना होता, न थोड़ा और न अधिक। मुझे किसी का थोड़ा या अधिक कुछ नहीं देना है, यह सोच कर वह सुख प्राप्त करता है, आनंद प्राप्त करता है। गृहपति! यही ऋणी न होने का सुख है।

गृहपति! **निर्दोष होने का सुख कौन-सा है?** गृहपति! एक कुल-पुत्र निर्दोष कायिक-कर्म से युक्त होता है, निर्दोष वाचिक कर्म से युक्त होता है, निर्दोष मानसिक कर्म से युक्त होता है। उसे यह सोच कर कि मैं निर्दोष कायिक कर्म से युक्त हूं, निर्दोष वाचिक कर्म से युक्त हूं, निर्दोष मानसिक कर्म से युक्त हूं, सुख प्राप्त होता है, आनंद प्राप्त होता है,। गृहपति! यही निर्दोष होने का सुख है। गृहपति! ये चार सुख हैं, जो किसी भी काम-भोगी गृहस्थ को समय-समय पर, वक्त-वक्त पर प्राप्य होने चाहिए।

– अङ्गुत्तरनिकाय १.४.६२, आनण्यसुत्त

विवाह धर्म-विधि

वह अधर्मानुसार नहीं, धर्मानुसार ही, भार्या की खोज करता है। इस विषय में धर्म-विधि क्या है? वह क्रय-विक्रय द्वारा उसे प्राप्त नहीं करता है। उसकी भार्या केवल उसके हाथ पर जल डाल कर उसके माता-पिता द्वारा उसे दी गयी होती है।

चार प्रकार के सहवास

"गृहपतियो! चार प्रकार के सहवास (संवास-एक साथ रहना) होते हैं। कौन-से चार?

(१) शव, शव के साथ सहवास करता है।

(२) शव देवी के साथ सहवास करता है।

(३) देव शव के साथ सहवास करता है।

(४) देव देवी के साथ सहवास करता है।

(१) कैसे गृहपतियो! शव शव के साथ सहवास करता है? यहां गृहपतियो! स्वामी (पति) हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठ बोलने वाला, नशेबाज, दु:शील, पापधर्मा, कंजूसी की गंदगी से लिप्त चित्त, श्रमण-ब्राह्मणों को दुर्वचन कहने वाला होकर गृह में वास करता है और उसकी भार्या भी हिंसक, चोर, दुराचारिणी, झूठ बोलने वाली, नशेबाज, दु:शील, पापधर्मा, कंजूसी की गंदगी से लिप्त चित्त, श्रमण-ब्राह्मणों को दुर्वचन कहने वाली होकर गृह में वास करती है, उस समय गृहपतियो! शव शव के साथ सहवास करता है।

(२) कैसे गृहपतियो! शव देवी के साथ सहवास करता है? गृहपतियो! स्वामी हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठ बोलने वाला, नशेबाज, दु:शील,

पापधर्मा, कंजूसी की गंदगी से लिप्त चित्त, श्रमण-ब्राह्मणों को दुर्वचन कहने वाला होकर गृह में वास करता है और उसकी भार्या अहिंसारत, चोरी से विरत, सदाचारिणी, सच्ची, नशा-विरत, सुशीला, कल्याण-धर्म-युक्त, मल-मात्सर्य-रहित, श्रमण-ब्राह्मणों को दुर्वचन न कहने वाली हो गृह में वास करती है। उस समय गृहपतियो! शव देवी के साथ सहवास करता है।

(३) कैसे गृहपतियो! देव शव के साथ सहवास करता है? गृहपतियो! स्वामी अहिंसारत होता है, चोरी से विरत, सदाचारी, सच्चा, नशा-विरत, सुशील, कल्याण-धर्म-युक्त, मल-मात्सर्य-रहित, श्रमण-ब्राह्मणों को दुर्वचन न कहने वाला हो गृह में वास करता है और उसकी भार्या हिंसक, चोर, दुराचारिणी, झूठ बोलने वाली, नशेबाज, दुःशील, पापधर्मा, कंजूसी की गंदगी से लिप्त चित्त, श्रमण-ब्राह्मणों को दुर्वचन कहने वाली होकर गृह में वास करती है। उस समय गृहपतियो! देव शव के साथ सहवास करता है।

(४) कैसे गृहपतियो! देव देवी के साथ सहवास करता है? गृहपतियो! स्वामी अहिंसारत होता है, चोरी से विरत, सदाचारी, सच्चा, नशा-विरत, सुशील, कल्याण-धर्म-युक्त, मल-मात्सर्य-रहित, श्रमण-ब्राह्मणों को दुर्वचन न कहने वाला हो गृह में वास करता है और उसकी भार्या भी अहिंसक चोरी से विरत, सदाचारिणी, सच्ची, नशा-विरत, सुशीला, कल्याण-धर्म-युक्त, मल-मात्सर्य-रहित, श्रमण-ब्राह्मणों को दुर्वचन न कहने वाली हो गृह में वास करती है। उस समय देव देवी के साथ सहवास करता है।

गृहपतियो! ये चार सहवास हैं।"

– अङ्गुत्तरनिकाय १.४.५३-५४, पठमसंवाससुत्त

मंगल मुहूर्त

सदाचार से परिपूर्ण समय ही गृहस्थ के लिए मांगलिक समय है।

पूर्वाह्न – जब कोई व्यक्ति पूर्वाह्न के समय काया, वाणी और चित्त से सदाचरण का पालन करता है तो वह उसके लिए पूर्वाह्नकालीन मंगल मुहूर्त होता है।

मध्याह्न – जब कोई व्यक्ति मध्याह्न के समय काया, वाणी और चित्त से सदाचरण का पालन करता है तो वह उसके लिए मध्याह्नकालीन मंगल मुहूर्त होता है।

अपराह्न – जब कोई व्यक्ति अपराह्न के समय काया, वाणी और चित्त से सदाचरण का पालन करता है तो वह उसके लिए सायंकालीन मंगल मुहूर्त होता है।

– अङ्गुत्तरनिकाय १.३.१५६, पुब्बण्हसुत्त

पांच वर्जित व्यापार

गृहस्थ को इन पांच प्रकार के व्यापार व्यवसाय से विरत रहना चाहिए: –

१) हथियारों का व्यवसाय
२) पशु-पक्षियों (प्राणियों) का व्यवसाय
३) मांस का व्यवसाय
४) मदिरा आदि नशीले पदार्थो का व्यवसाय
५) विष का व्यवसाय

– अङ्गुत्तरनिकाय २.५.१७७, वणिज्जासुत्त

हितसुखकारी दुर्लभ पंचरत्न

संसार में इन पांच रत्नों का प्रादुर्भाव दुर्लभ होता है।

१) संसार में तथागत अरहन्त सम्यक सम्बुद्ध का प्रादुर्भाव दुर्लभ होता है।

२) संसार में शुद्ध धर्म के उपदेशक का प्रादुर्भाव दुर्लभ होता है।

३) संसार में शुद्ध धर्म का उपदेश सुन लेने पर भी उसे समझने वाले का प्रादुर्भाव दुर्लभ होता है।

४) संसार में शुद्ध धर्म का उपदेश सुन-समझ कर भी तदनुकूल आचरण करने वाले का प्रादुर्भाव दुर्लभ होता है।

५) संसार में कृतज्ञ और बिना बदले में कुछ चाहे परोपकार करने वाले का प्रादुर्भाव दुर्लभ होता है।

– अङ्गुत्तरनिकाय २.५.१४३, १९५, सारन्ददसुत्त, पिङ्गियानीसुत्त

धर्म रक्षा करता है

धर्म का आचरण करने वाले व्यक्ति की 'धर्म' रक्षा करता है, धर्म का पालन सुख लाता है। धर्म के पालन में यह गुण है कि धर्म का आचरण करने वाला व्यक्ति दुर्गति को नहीं प्राप्त होता है।

धर्म का आचरण करने वाले व्यक्ति की 'धर्म' वर्षाकाल में बहुत बड़े छाते की भांति रक्षा करता है।

– जातक १.१०.१०३, महाधम्मपालकजातक (४४७)

अपने कर्म से ही सुगति-दुर्गति, प्रार्थना से नहीं

एक समय भगवान नालंदा में विहार कर रहे थे। असिबंधक ग्रामणी भगवान के पास आया और बोला – 'भंते! ब्राह्मण मरे को बुलाते हैं, स्वर्ग में भेज देते हैं। भंते! भगवान अर्हत सम्यक संबुद्ध हैं। भगवान ऐसा कर सकते हैं कि सारा लोक मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो सुगति को प्राप्त होवे।'

'ग्रामणी! तो मैं तुम्हीं से पूछता हूं, जैसा समझो उत्तर दो। क्या समझते हो ग्रामणी! कोई पुरुष जीव-हिंसा करने वाला, चोरी करने वाला, व्यभिचार करने वाला, झूठ बोलने वाला, चुगली खाने वाला, कठोर बोलने वाला, गप्प हांकने वाला, लोभी, नीच, मिथ्या दृष्टि वाला हो। तब बहुत से लोग आकर उसकी प्रशंसा करें, हाथ जोड़ें, निवेदन करें – आप मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हों, अच्छी गति को प्राप्त हों। ग्रामणी! तो क्या तुम समझते हो, वह पुरुष मरने के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो अच्छी गति को प्राप्त होगा?

'नहीं, भंते!'

ग्रामणी! जैसे कोई पुरुष गहरे जलाशय में एक बड़ा पत्थर छोड़ दे। वहां बहुत से लोग आकर उसकी प्रशंसा करें, हाथ जोड़ें, निवेदन करें – 'हे पत्थर! ऊपर आवें। ऊपर आ जायँ। तट-स्थल पर चले आवें। ग्रामणी! तो क्या तुम समझते हो, वह पत्थर तट-स्थल पर चला आवेगा?

'नहीं, भंते!'

'ग्रामणी! वैसे ही जो पुरुष जीव-हिंसा करने वाला है, उसको बहुत से लोग आकर निवेदन करें, तो भी वह मरने के बाद नरक में उत्पन्न हो दुर्गति को ही प्राप्त होगा।

जैसे कोई घी या तेल के घड़े को गहरे जलाशय में डुबो कर फोड़ दे। तब उसमें जो कंकड़-पत्थर हों, वह नीचे डूब जायँ, जो घी या तेल हो वह ऊपर छलक आये। तब बहुत से लोग प्रार्थना करें – 'हे घी! हे तेल! आप डूब जायँ, आप नीचे चले जायँ, तो यह संभव नहीं। ग्रामणी! अपने कर्म से ही सुगति-दुर्गति होती है, प्रार्थना से नहीं।

– संयुत्तनिकाय २.४.३५८, असिबन्धकपुत्तसुत्त

अंधविश्वास का त्याग

"कालामो! किसी भी बात को श्रुति से मत ग्रहण करो और न तो परंपरा से, न प्रथा से, न ग्रंथ में आने के कारण, न तर्क से सिद्ध होने से, न न्याय सिद्ध होने से, न सुंदर आकार का जान पड़ने से, न अपनी पसंद की होने से, न समर्थ जान पड़ने, तथा 'यह हमारे श्रमण (गुरु) का कथन है' – न ऐसा ही सोच कर।

कालामो! जब तुम लोग स्वयमेव जानो कि यह बात अकुशल है, सदोष है, विज्ञों द्वारा निंदित है और इसे भली प्रकार ग्रहण करने से दुःख एवं अहित होगा, तो कालामो! उसे छोड़ दो।

कालामो! जब तुम लोग स्वयमेव जानो कि यह बात कुशल है, निर्दोष

है, विज्ञों द्वारा प्रशंसित है और उसे भली प्रकार ग्रहण करने से सुख एवं हित होगा, तो कालामो! उसे ग्रहण करके विहरो।"

"भिक्षुओ! मेरे वचन को भी इसलिए मत ग्रहण करो कि मैं कहता हूं, अपितु भली प्रकार परीक्षा करके ही ग्रहण करो।"

– अङ्गुत्तरनिकाय १.३.६६, केसमुत्तिसुत्त

गृहस्थ को निर्वाण की प्राप्ति

"भंते! क्या कोई गृहस्थ है जिसने अपने घर पर सभी कामों का भोग करते, स्त्री और बालबच्चों के साथ रहते, रुपये-पैसे के फेर में रहते और मणि-मोती-सोना के आभूषण को सिर में लगाते हुए ही परम शांत पद निर्वाण का साक्षात्कार कर लिया हो?"

"महाराज! न एक सौ, न दो सौ, न तीन, चार, पांच सौ, न एक हजार, न एक लाख, न सौ करोड़, न लाख करोड़, ऐसे गृहस्थ हो चुके हैं, जिन्होंने निर्वाण का साक्षात्कार किया है। महाराज! दस, बीस, सौ, या हजार की गिनती को तो छोड़ दें, मैं किस तरह आपको समझाऊं?"

– मिलिन्दपञ्ह ५.४.१, धुतङ्गपञ्ह

शीलवती गृहिणी

विशाखे! जिस स्त्री में ये चार बातें होती हैं, वह इस लोक विजय के मार्ग पर आरूढ़ होती है और वह इस लोक को प्रसन्न किये होती है। कौन-सी चार बातें? विशाखे! स्त्री अपने कर्मांत की सम्यक व्यवस्थापिका होती है, अपने परिजनों का संग्रह करने वाली होती है, स्वामी की इच्छा के अनुकूल आचरण करने वाली होती है तथा कमाये हुए धन की रक्षा करने वाली होती है।

विशाखे! स्त्री अपनी कर्मांत की सम्यक व्यवस्थापिका कैसे होती है? जो स्वामी के भीतर के काम – चाहे ऊन का काम हो, चाहे कपास का काम हो – होते हैं, उनमें वह दक्ष होती है, आलस्यरहित होती है, उनके विषय में उपाय कुशल होती है, उन्हें करने-कराने में समर्थ स्त्री अपने कर्मांत की सम्यक व्यवस्थापिका होती है।

विशाखे! स्त्री अपने परिजनों का संग्रह करने वाली कैसे होती है? विशाखे! जो स्वामी के घर के आदमी होते हैं – दास, नौकर-चाकर – वह उनके कृत-अकृत को जानने वाली होती है तथा उन्हें जो कुछ खाना-पीना देना होता है, वह यथायोग्य बांट कर देती है। विशाखे! स्त्री इस प्रकार अपने परिजनों का संग्रह करने वाली होती है।

विशाखे! स्त्री कैसे स्वामी की इच्छा के अनुकूल आचरण करने वाली होती है? विशाखे! जो कुछ पति की इच्छा के प्रतिकूल होता है, उसे धर्मसंगिनी स्त्री अपनी जान बचाने तक के लिए भी नहीं करती है। विशाखे! स्त्री इस प्रकार स्वामी की इच्छा के अनुकूल आचरण करने वाली होती है।

विशाखे! स्त्री कैसे कमाये हुए की रक्षा करने वाली होती है? विशाखे! जो कुछ धन-धान्य या स्वर्ण स्वामी कमा कर लाता है, उसे सुरक्षित रखती है, उसको लेकर धूर्त नहीं होती, चोरी करने वाली नहीं होती, शराब पीने

वाली नहीं होती, उसे नष्ट करने वाली नहीं होती। विशाखे! स्त्री इस प्रकार कमाये हुए की रक्षा करने वाली होती है। विशाखे! जिस स्त्री में ये चार बातें होती हैं, वह इस लोक विजय के मार्ग पर आरूढ़ होती है और वह इस लोक को प्रसन्न किये होती है।

विशाखे! जिस स्त्री में ये चार बातें होती हैं, वह परलोक विजय के मार्ग पर आरूढ़ होती है, वह परलोक को प्रसन्न किये होती है। कौन-सी चार बातें?

विशाखे! स्त्री श्रद्धा-संपन्न होती है, शीलसंपन्न होती है, त्यागसंपन्न होती है, तथा प्रज्ञासंपन्न होती है।

विशाखे! स्त्री श्रद्धा-संपन्न कैसे होती है? विशाखे! वह श्रद्धावान होती है, तथागत की बोधि के प्रति श्रद्धायुक्त होती है – "वे भगवान अरहंत हैं, सम्यक संबुद्ध हैं, विद्या तथा आचरण से युक्त हैं, सुगत हैं, लोकविदु हैं, अनुपम हैं, (दुष्ट) पुरुषों का दमन करने वाले सारथी हैं, देवताओं तथा मनुष्यों के शास्ता हैं, बुद्ध भगवान हैं।" विशाखे! इस प्रकार स्त्री श्रद्धासंपन्न होती है।

विशाखे! स्त्री शील-संपन्न कैसे होती है? विशाखे! स्त्री प्राणी हिंसा से, चोरी से, व्यभिचार से, मिथ्या भाषण से और सुरा-मेरय्य आदि नशीली वस्तुओं के सेवन से विरत होती है। विशाखे! स्त्री इस प्रकार शील-संपन्न होती है।

विशाखे! स्त्री त्यागसंपन्न कैसे होती है? विशाखे! स्त्री त्यागशील होती है, मल-मात्सर्य से रहित हो गृहवास करती है, मुक्तहस्त होती है, खुलेहाथ त्याग करने वाली, परित्याग करने वाली तथा दान देने वाली होती है। विशाखे! इस प्रकार स्त्री त्याग-संपन्न होती है।

विशाखे! स्त्री प्रज्ञासंपन्न कैसे होती है? विशाखे! स्त्री प्रज्ञासंपन्न होती है, उदय और अस्त का अनुभव कराने वाली, अविद्या के आवरण को

बींधने वाली, सम्यक रूप से दुःख का क्षय कराने वाली आर्य प्रज्ञा से युक्त होती है। विशाखे! स्त्री इस प्रकार प्रज्ञासंपन्न होती है।

विशाखे! जिस स्त्री में ये चार बातें होती हैं, वह परलोक विजय के मार्ग पर आरूढ़ होती है, वह परलोक प्रसन्न किये होती है।

सुसंविहितकम्मन्ता, सङ्गहितपरिज्जना।
भत्तु मनापं चरति, सम्भतं अनुरक्खति॥

सद्धा सीलेन सम्पन्ना, वदञ्ञू वीतमच्छरा।
निच्चं मग्गं विसोधेति, सोत्थानं सम्परायिकं॥

इच्चेते अट्ठ धम्मा च, यस्सा विज्जन्ति नारिया।
तम्पि सीलवतिं आहु, धम्मट्ठं सच्चवादिनिं॥

सोळसाकारसम्पन्ना, अट्ठङ्गसुसमागता।

तादिसी सीलवती उपासिका, उपपज्जति देवलोकं मनापं॥

– अङ्गुत्तरनिकाय ३.८.४९-५०, इधलोकिकसुत्त

– जो अपने कर्मांत की सम्यक व्यवस्थापिका होती है, जो परिजनों का संग्रह करने वाली होती है, जो पति की इच्छा के अनुकूल चलती है, जो कमाये हुए धन की रक्षा करती है, जो श्रद्धायुक्त होती है, जो सदाचारिणी होती है, जो प्रज्ञावती होती है तथा जो त्यागशील होती है, वह इस प्रकार नित्य परलोक पथ को शुद्ध करती है।

इस प्रकार जिस स्त्री में ये आठ बातें हों, वह धर्मस्थित सत्यवादी नारी शीलवती कहलाती है।

कुल-वधू के लिए दस उपदेश

भगवान बुद्ध के जीवन-काल में उनके परम भक्त और दृढ़ अनुयायी श्रेष्ठि धनंजय ने अपनी बड़ी बेटी विशाखा का विवाह कर उसे विदा करते हुए ये मांगलिक उपदेश दिए, जिनका पालन कर वह सदा सुखी रही।

ये उपदेश यकायक सुनने में बड़े अस्पष्ट और कुछ-कुछ अटपटे भी लगते हैं। बहू विशाखा के श्वसुर श्रेष्ठि मिगार को भी इन्हें सुन कर शंका-संदेह उत्पन्न हुआ था, जिनका कि निवारण विशाखा के स्पष्टीकरण द्वारा हुआ और बात बिगड़ते-बिगड़ते बची।

उपदेशों का स्पष्टीकरण

(१) अंदर की आग बाहर न ले जानी चाहिए।

यदि श्वसुर-कुल के किसी व्यक्ति में कोई दोष दीखे या घर में कोई पारस्परिक कलह हो, तो बहू को चाहिए कि उसे बाहर के लोगों को न बताए। इससे बढ़ कर घर की अन्य कोई आग बाहर नहीं ले जायी जा सकती।

(२) बाहर की आग अंदर न ले आनी चाहिए।

अड़ोस-पड़ोस के व बाहर के अन्य लोग श्वसुर-कुल के व्यक्तियों की निंदा करते हों, उन्हें अपशब्द कहते हों, तो उन्हें सुनने पर घर में आकर नहीं कह देना चाहिए। इससे बढ़कर बाहर की आग घर में नहीं लायी जा सकती।

(३) देते हुए को ही देनी चाहिए।

घर में सदा काम आने वाली कोई आवश्यक वस्तु कोई उधार मांगने आए तो उसे ही देनी चाहिए, जो वायदे के अनुसार समय पर लौटा देता हो।

(४) न देते हुए को न देनी चाहिए।

ऐसी मँगनी की वस्तु ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं देनी चाहिए, जो वादा करके भी लौटाता न हो।

जीवन में अक्सर ऐसे अवसर आते हैं जबकि अपने घर में काम आने वाली कोई अत्यंत आवश्यक वस्तु मँगनी में दे दी जाती है और फिर वह लौट कर नहीं आती। इससे हम अपनी वह वस्तु भी खो बैठते हैं और मांग कर ले जाने वाले का स्नेह-संबंध भी। न दें तो एक के खोने की ही आशंका रहती है! अतः न देना ही भला।

(५) देते हुए को भी और न देते हुए को भी देना चाहिए।

परंतु कोई ऐसी मँगनी की वस्तु हो जिसके न लौटाने पर भी हमारा काम चल सकता हो और हम उसका न लौटाना सह सकते हों तो चाहे वह धनी हो अथवा निर्धन, अपरिचित हो अथवा मित्र-स्नेही, मांगने वाले को अवश्य ही दे देनी चाहिए; भले वह वापस लौटाए या नहीं। इस प्रकार सहायता समझ कर दी हुई वस्तु न लौटाये जाने पर मन में कटुता नहीं पैदा होती।

(६) सुख से बैठना चाहिए।

जब घर में सास-श्वसुर, पति व अन्य जेठे खड़े हों तो वहां बहू का बैठे रहना न उचित है न सुखकर। सब के बैठ जाने पर ही उसका बैठना सुख से बैठना कहलाता है।

(७) सुख से खाना चाहिए।

इसी प्रकार सबको खिला चुकने के बाद ही गृहिणी का स्वयं भोजन करना समीचीन है और वही उसके लिए सुख से खाना है।

(८) सुख से सोना चाहिए।

घर का सारा काम-काज पूरा करके, बड़ों की उचित सेवा-सुश्रूषा कर

लेने के बाद, उनके सो जाने पर ही बहू का सोना शोभनीय है और वही उसके लिए सुख से सोना है।

(९) अग्नि की परिचर्या करनी चाहिए।

पति, सास-श्वसुर और परिवार के अन्य वृद्धजनों को अग्नि की भांति तेजस्वी मान कर सेवा-सुश्रूषा करनी चाहिए।

(१०) अंदर के देवताओं को नमस्कार करना चाहिए।

पति, सास-श्वसुर और परिवार के अन्य वृद्धजनों को कुल देवताओं की भांति पूज्य मान कर सदैव उनका नमन और आदर-सत्कार करना चाहिए।

– धम्मपद अट्ठकथा १.५२, विसाखासुत्त

ये हैं सद्धर्म के दस मांगलिक और व्यावहारिक उपदेश जो कि प्रत्येक कुल-वधू के लिए माननीय हैं, सेवनीय हैं, पालनीय हैं। इनका सम्यक परिपालन उसके व्यवहार-जगत को सौम्य-माधुर्य से परिपूरित कर देने में सहज समर्थ है।

नवल वर-वधू के प्रति आशीर्वचन

(रंगून (बर्मा) दि. १० जुलाई, १९६७ के दिन अपने पुत्र और पुत्रवधू का स्वयं मंगल-विवाह कराते हुए गुरुदेव श्री सत्यनारायण गोयन्का ने लौकिक संस्कारों का प्रतिपादन किया और उन्हें शुद्ध धर्म के अलंकरण से अलंकृत करते हुए वर-वधू के प्रति निम्न आशीर्वचन और धर्म उद्बोधन कहे)

प्रिय पुत्र! प्रिय पुत्र-वधू!

आज तुम्हारे जीवन का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण दिवस है। मानवीय जीवन की प्रथम कौमार्य मंजिल को पूरा करके गृही-जीवन की दूसरी मंजिल में प्रवेश करते हुए तुम दोनों ने अपने आपको पावन दाम्पत्य-सूत्र में बांधा है। तुम्हारा गृहस्थ जीवन सफल हो, सार्थक हो, धर्ममय हो!

जीवन धर्ममय बनाने के लिए तुम्हें यह समझ लेना आवश्यक है कि धर्म क्या है? कर्म और तदनुकूल कर्मफल के नैसर्गिक नियमों के प्रति संपूर्ण आस्था रखते हुए दुष्कर्मों से बचना और सत्कर्मों में लगना, यही धर्म है। या यों कहें – **"सदाचरण ही धर्म है, दुराचरण अधर्म है।"** सदाचरण में निरत रहने और दुराचरण से विरत रहने के लिए मन को वश में करना यानी समाधि का अभ्यास और उसे निर्मल बनाने यानी प्रज्ञा जागरण का अभ्यास नितांत अनिवार्य है। अतः ये दोनों भी धर्म के अभिन्न अंग है। यों शील, समाधि, प्रज्ञा – इन तीनों में परिपूर्ण और परिशुद्ध धर्म समाया हुआ है। तुम दोनों इन्हें अपने जीवन में उतार कर धन्यता प्राप्त करोगे और प्रभूत सुख-शांति तथा मंगल-कल्याण के सहभागी बनोगे।

दाम्पत्य-सूत्र में बंधते हुए जिन लौकिक औपचारिकताओं में से गुजरे, वे पारिवारिक और सामाजिक सौमनस्यता तथा लोक-संग्रह के लिए आवश्यक थीं। परंतु इन औपचारिकताओं की सद्धर्ममयी व्याख्या समझ लेनी चाहिए ताकि सद्धर्म का समुचित पालन करके पूर्णतया लाभान्वित हो सको।

प्रिय बच्चो! चँवरी चढ़ने के पूर्व तुम दोनों का मंगल अभिषेक किया गया। तुम्हें पीठी-उबटन आदि से नहलाया-धुलाया गया। जिस प्रकार बाह्य स्नान द्वारा तुमने अपने शरीर पर लगे मैल धोये, उसी प्रकार विपश्यना द्वारा अपने चित के आभ्यंआतरिक मैल को भी धोते रहना होगा। सुखी स्वस्थ जीवन के लिए शरीर को स्वच्छ शुद्ध रखना जितना आवश्यक है उससे कहीं अधिक आवश्यक है मन को स्वच्छ शुद्ध रखना।

प्रियभाषी पुत्र! विवाह-मण्डप में तुम्हारा स्वागत करते हुए तुम्हारी सास ने तुम्हें मधुपर्क पान कराया। उसी मिठास से तुम्हारी जिह्वा भरी रहे। तुम सदैव मधुर, कर्णप्रिय, कल्याणकारी वाणी ही बोलो! कड़वी, अप्रिय और अकल्याणकारी वाणी तुम्हारी जिह्वा पर आने न पाये! मधुपर्क-पान का यही महत्त्व है। जैसे तुम प्रियभाषी बनो वैसे ही **प्रियंवदा कुलवधू** भी मंजुभाषिणी बनी रहे।

प्यारे बच्चो! विवाह-वेदी पर तुम दोनों ने एक-दूसरे का निरीक्षण-अवलोकन किया। वह इसी अर्थ में कि तुम दोनों ने भली-भांति देख-भाल कर, जान-समझ कर, बिना किसी बाहरी दबाव अथवा दहेज आदि के प्रलोभन से, एक दूसरे को स्वीकार किया है। और इस संबंध में तुम्हें बड़ों का आशीर्वाद भी प्राप्त है।

जब विवाह-वेदी पर तुम्हारा वैवाहिक गठबंधन बांधा गया तो तुम दोनों इस बात के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ हुए कि तुम्हारा यह दांपत्य संबंध आजीवन अटूट बना रहेगा।

मेरे लाड़ले! पाणिग्रहण (हथलेवा) संस्कार कराते हुए तुम्हारी सास पवित्र जल की अंजलि द्वारा अपनी इस परम पवित्र, प्राण-प्यारी पुत्री को तुम्हारी जीवन-संगिनी बना कर प्रसन्न हुई। इसका अर्थ है तुमने इस अनमोल कन्या-रत्न को स्वीकार करते हुए इसे अपने प्राणों से अधिक प्यार करने तथा सदा सुरक्षित रखने का जिम्मा लिया; बहू को अपनी अर्धांगिनी एवं सहधर्मिणी बनाते हुए आजीवन धर्ममय दाम्पत्य जीवन का दायित्व निभाने का व्रत लिया। पाणिग्रहण के समय रजत-पात्र में जो निर्मल

जल-धाराएं प्रवाहित की गयीं, उसका यही अर्थ है कि जिस प्रकार दो पात्रों का जल परस्पर मिल जाने के बाद अविभाज्य और अभेद्य हो जाता है वैसे ही तुम दोनों का यह पावन संबंध सदैव अविभाज्य और अभेद्य बना रहेगा; तुम दोनों का सात्विक प्रेम सदैव निर्मल और निष्कलंक रहेगा। शंका-संदेह और मनोमालिन्य की दुर्भावनाएं इसे दूषित न कर पायेंगी।

सुविज्ञ नवल दम्पति! तुम दोनों ने चार बार अग्नि की परिक्रमा की – चार फेरे लिये। पृथ्वी, वायु, जल और अग्नि – इन चार महाभूतों की साक्षी में तुमने एक दूसरे का वरण किया, उसका यही अर्थ है कि एक दूसरे के साथ जीवन-यात्रा पूरी करने के लिए तुम कृत-संकल्प हो और एक दूसरे की सहायता-सहयोग द्वारा शील, समाधि, प्रज्ञा और विमुक्ति के इन चारों धर्मो का पालन करने का तुम्हारा निश्चय अटल है। तुम्हारा यह सम्यक संकल्प, तुम्हारा यह मांगलिक निश्चय आजीवन अडिग रहे! प्रभूत शुभफलदायी हो!

मेधावी बच्चो! जब तुम दोनों ने विवाह-यज्ञ में मिल-जुल कर लाजा-हवन किया तो उसका यही अर्थ समझना चाहिए कि जिस प्रकार इस होम की अग्नि में ये लाजा-हव्य जल कर स्वाहा हो रहे हैं, उसी प्रकार तुम दोनों अंतर्प्रज्ञा की यज्ञाग्नि में समस्त राग, द्वेष, मोह और प्रमाद को जला कर स्वाहा कर लोगे; मानसिक, वाचिक और कायिक दुराचरण तथा मिथ्यादृष्टि को भस्मीभूत कर लोगे।

लाड़ले लाल! बहू को तुमने अपनी बायीं और बैठने के लिए आमंत्रित किया तो इसका यही अर्थ है कि शरीर की बायीं ओर स्थित अपने हृदय की इसे चिरस्वामिनी बनाए रखोगे। साथ ही यह भी कि पति के इन पांच कर्तव्यों का पालन करने के लिए तुम सदा दृढ़-प्रतिज्ञ रहोगेः –

(१) **सम्माननाय –** अपनी पत्नी का सदा सम्मान करोगे।

(२) **अनवमाननाय –** उसका कभी अपमान नहीं करोगे बल्कि उसके साथ समानता का व्यवहार करते हुए अपने दाम्पत्य जीवन को सुखी और समृद्ध बनाओगे।

(३) **अनतिचरियाय –** व्यभिचार आदि अनाचारों से विरत रह कर उसके विश्वासपात्र बने रहोगे।

(४) **इस्सरियवोसग्गेन –** अपनी कमायी हुई धन संपत्ति के ऐश्वर्य से उसे सदैव संतुष्ट रखोगे।

(५) **अलङ्कारानुप्पदानेन –** आवश्यक अलंकार आभूषण आदि देते रह कर उसे सदा प्रसन्न रखोगे।

लाड़ली बहू! पत्नी के ये पांच कर्तव्य पालन करने के लिए तुम भी सदा दृढ़प्रतिज्ञ रहोगीः –

(१) **सुसंविहितकम्मन्ता च होति –** घर का सुप्रबंध करोगी।

(२) **सङ्गहितपरिजना च –** परिवार के स्वजन-परिजन और घर के नौकर-चाकरों को प्रसन्न रख कर अपने अनुकूल बना लोगी।

(३) **अनतिचारिनी च –** व्यभिचार आदि अनाचारों से विरत रह कर अपने प्रिय पति की विश्वास-भाजन बनी रहोगी।

(४) **सम्भतञ्च अनुरक्खति –** पति द्वारा सपरिश्रम कमा कर लायी हुई धन-संपदा की समुचित रक्षा करोगी।

(५) **दक्खा च होति, अनलसा सब्बकिच्चेसु –** घर-गृहस्थी के सभी कामों में दक्ष होकर आलस्य-हीन और कर्मठ बनी रहोगी।

–दीघनिकाय ३.२६९, सिङ्गालसुत्त

धर्मचारी लाल! तुमने धर्मप्रिया बहू को वामांगिनी बनाते हुए जो वचन दिये उनमें से इस एक के प्रति विशेष सजग रहना है और वह यह कि जीवन पर्यत दान-दक्षिणा, शील-साधना आदि सभी धार्मिक अनुष्ठानों में, सभी पारिवारिक व सामाजिक आयोजनों में, इस धर्मसंगिनी को सदा अपने साथ रखोगे और इसके उचित परामर्श-सहयोग का सम्मान करोगे।

धर्मचारिणी बहू! इस संदर्भ में तुम भी अपना यह निश्चय कायम रखोगी कि अपने प्रिय पति के सभी धार्मिक अनुष्ठानों में, पारिवारिक व सामाजिक आयोजनों में इसका सहर्ष साथ दोगी।

प्रिय पुत्र! प्रिय पुत्र-वधू! जब तुम दृढ़ शिला पर खड़े हुए तो उसका अर्थ यही था कि तुम दोनों भगवान तथागत द्वारा मंगल-सूत्र में गृहस्थों के लिए उपदिष्ट ३८ मांगलिक धर्मों का जीवनपर्यंत दृढ़तापूर्वक पालन करोगे और पराभव-सूत्र में बताये गये पतन के सभी कारणों से सर्वदा दूर रहोगे। और एक अर्थ यह भी कि तुम दोनों अपने दाम्पत्य संबंध को चट्टान की तरह दृढ़ रखोगे। और यह भी कि जीवन में यदि कभी कोई अनचाही अप्रिय स्थिति उत्पन्न हो भी जाय तो तुम्हारा मन जरा भी विचलित नहीं हो पायेगा। तुम दोनों इस दृढ़ शिला-खंड की भांति हर संकट का, हर तूफान का निष्कंप रह कर सामना करोगे और विजयलाभी होओगे।

सुभगे! तुम्हें वामांगिनी स्वीकार कर जब **भाग्यवान वर** ने तुम्हारी मांग में सिंदूर भरा तो यह मंगल-कामना की कि तुम्हारा सौभाग्य बना रहे। उसका यह धार्मिक अर्थ समझना चाहिए कि शृंगार प्रसाधन सौभाग्य का प्रतीक अवश्य है, परंतु उसका प्रत्यय नहीं। प्रत्यय तो वे मांगलिक धर्म ही हैं जिनका समुचित पालन करते हुए गृहिणी आजन्म सौभाग्यशालिनी बनी रहती है, उसकी सुख-संपदा बनी रहती है। तुम भी इसी प्रकार मांगलिक धर्मों का पालन करते हुए अपने सुख सुहाग को सुरक्षित रखोगी।

सुप्रज्ञ नवल दम्पति! तुम दोनों ने सप्तपदी का संस्कार पूरा किया! समझो, क्या है यह सप्तपदी? भगवान तथागत ने गृहस्थों के लिए सात धन-संपत्तियां बतायी हैं और तुम दोनों ने आज एक साथ, कदम से कदम और कंधे से कंधा मिला कर पारस्परिक सहयोग द्वारा इन धन-संपत्तियों को अर्जित करने का शिव संकल्प किया है। ये धन-संपत्तियां हैं: –

(१) श्रद्धा-धन – उन भगवान अरहंत सम्यक संबुद्ध के प्रति तुम्हारी अटूट श्रद्धा हो जिनका उपदेशित सनातन आर्यधर्म मानवमात्र के लिए कल्याणकारी है और लौकिक तथा पारलौकिक हित-सुख के साथ-साथ लोकोत्तर अमृत-पद की उपलब्धि का सहज-सरल साधन है। इस विवेकपूर्ण श्रद्धा के बल पर तुम दोनों इस कल्याणकारी धर्म का पालन कर अपना वर्तमान और भविष्य सुधार लोगे। यही श्रद्धा-धन है।

(२) **शील-धन –** तुम दोनों हिंसा, चोरी, व्यभिचार, असत्यभाषण एवं मदिरा आदि नशीली वस्तुओं के सेवन से विरत रहोगे। यही शील-धन है।

(३) **लज्जा-धन –** शरीर, वाणी और मन द्वारा रंचमात्र भी दुष्कर्म करते हुए तुम लज्जा अनुभव करोगे। यही लज्जा-धन है।

(४) **(पाप) भीरुता-धन –** राग, द्वेष, मोह, क्रोध, वैर, ढोंग, निर्दयता, ईर्ष्या, मात्सर्य, माया, शठता, कठोरता, कलह, अभिमान, मद, प्रमाद आदि दुर्गुणों में भय देखते हुए तुम इनसे दूर रहोगे। यही (पाप) भीरुता-धन है।

(५) **श्रुति-धन –** बहुश्रुत होकर सद्धर्म का ज्ञान प्राप्त करोगे। सद्धर्म का सम्यक ज्ञान होने से मन में किसी प्रकार की आशंका-कुशंका नहीं उठेगी और पूर्ण आश्वस्त हो धर्म का पालन कर उससे लाभान्वित हो सकोगे। यही श्रुति-धन है।

(६) **त्याग-धन –** परिवार-पालन का दायित्व निभाते हुए कंजूसी को त्याग कर सत्पात्र और सत्कार्य में खुले हाथों दान देते रहोगे। यही त्याग-धन है।

(७) **प्रज्ञा-धन –** समाधि द्वारा चित्त-एकाग्रता का अभ्यास करते रहोगे और अंतर्चक्षु जगाकर संस्कारों के उदय-व्यय का यथाभूत विदर्शन करते हुए प्रज्ञा द्वारा अपने मानस को सभी विकारों से विमुक्त करते रहोगे और इस प्रकार सभी दु:खों का क्षय कर लोगे। यही प्रज्ञा-धन है।

– अङ्गुत्तरनिकाय २.७.५–७, वित्थतधनसुत्त

प्रिय युगल! परिणय मंगल के इस शुभ अवसर पर अपने दायित्व की गंभीरता को समझते हुए तुम दोनों उपरोक्त गृहस्थ धर्मो के पालन के लिए सदा कटिबद्ध रहना। पालन किया हुआ यह धर्म जीवन भर तुम्हारी रक्षा करेगा, तुम्हारे दाम्पत्य जीवन को ऊर्ध्वगामी बनायेगा, सुख-समृद्धि से परिपूर्ण करेगा, दीर्घजीवी बनायेगा, यश, बल और वर्ण की अभिवृद्धि करेगा और अमृत-पद की प्राप्ति करायेगा।

तुम दोनों धर्म-विहारी बनो! धर्म-बहुल बनो! धर्म-पालक बनो! आदर्श सद्गृहस्थ बनो!

यही हैं – माता-पिता के आशीर्वचन!!

करणीयमेत्त-सुत्त

करणीयमत्थकुसलेन, यन्तं सन्तं पदं अभिसमेच्च।
सक्को उजू च सुहुजू च, सूवचो चस्स मुदु अनतिमानी॥

– जिसे अपना कुशल करना है, स्वार्थ साधना है और परम-पद निर्वाण उपलब्ध करना है उसे चाहिए कि वह सुयोग्य बने, सरल बने, अति सरल बने, सुभाषी बने, मृदु-स्वभावी बने और निरभिमानी बने।

सन्तुस्सको च सुभरो च, अप्पकिच्चो च सल्लहुकवुत्ति।
सन्तिन्द्रियो च निपको च, अप्पगब्भो कुलेस्वननुगिद्धो॥

– वह संतुष्ट रहे। थोड़े में अपना पोषण करे। अल्पकृत्य रहे यानी दीर्घ-सूत्री योजनाओं में न उलझा रहे। सादगी का जीवन अपनाये। शांत-इंद्रिय बने। परिपक्व प्रज्ञावान बने। अप्रगल्भ बने यानी दुस्साहसी न हो और न ही जाति-कुल के मिथ्याभिमान में अनुरक्त हो।

न च खुद्दं समाचरे किञ्चि, येन विञ्ञू परे उपवदेय्युं।
सुखिनो व खेमिनो होन्तु, सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता॥

– वह यत्किंचित भी दुराचरण न करे जिसके कारण अन्य विज्ञजन उसे बुरा कहें। वह अपने मन में सदैव यही भावना करे – “सारे प्राणी सुखी हों! निर्भय सक्षेम हों! आत्म-सुखलाभी हों!”

ये केचि पाणभूतत्थि, तसा वा थावरा वा अनवसेसा।
दीघा वा ये व महन्ता, मज्झिमा रस्सका अणुकथूला॥

– वे प्राणी चाहे स्थावर हों या जंगम, दीर्घ देहधारी हों या महान देहधारी, मध्यम देहधारी हों या देहधारी, सूक्ष्म देहधारी हों या स्थूल देहधारी –

दिट्ठा वा येव अदिट्ठा, ये च दूरे वसन्ति अविदूरे।
भूता वा सम्भवेसी वा, सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता॥

– दृश्य हों या अदृश्य, सुदूरवासी हों या अदूरवासी, जन्मे हों या अजन्मे, बिना भेद के सभी प्राणी आत्म-सुखलाभी हों!

न परो परं निकुब्बेथ, नातिमञ्ञेथ कत्थचि न कञ्चि।
ब्यारोसना पटिघसञ्ञा, नाञ्ञमञ्ञस्स दुक्खमिच्छेय्य॥

– वे परस्पर प्रवंचना न करें। कहीं किंचित भी अवमान-अपमान न करें। क्रोध या वैमनस्य के वशीभूत होकर एक-दूसरे के दुःख की कामना न करें।

माता यथा नियं पुत्तं, आयुसा एकपुत्तमनुरक्खे।
एवम्पि सब्बभूतेसु, मानसं भावये अपरिमाणं॥

– जिस प्रकार जीवन की भी बाजी लगाकर मां अपने इकलौते पुत्र की रक्षा करती है, उसी प्रकार वह भी समस्त प्राणियों के प्रति अपने मन में अपरिमित मैत्रीभाव बढ़ाये।

मेत्तञ्च सब्बलोकस्मिं, मानसं भावये अपरिमाणं।
उद्धं अधो च तिरियञ्च, असम्बाधं अवेरं असपत्तं॥

– वह अपने मानस की अपरिमित मैत्रीभावना ऊपर-नीचे और आड़े-तिरछे समस्त लोकों में व्याप्त कर ले, बिना किसी बाधा के, बिना किसी बैर के, बिना किसी द्रोह के।

तिट्ठं चरं निसिन्नो वा, सयानो वा यावतास्स विगतमिद्धो।
एतं सतिं अधिट्ठेय्य, ब्रह्ममेतं विहारमिधमाहु॥

– जब तक निद्रा के आधीन नहीं है, तब तक खड़े, बैठे या लेटे हर अवस्था में इस अपरिमित मैत्रीभावना की जागरूकता को अधिष्ठित रखे, कायम रखे। इसे ही भगवान ने ब्रह्मविहार कहा है।

दिट्ठिञ्च अनुपग्गम्म, सीलवा दस्सनेन सम्पन्नो।
कामेसु विनेय्य गेधं, न हि जातुग्गब्भसेय्यं पुनरेति॥

– सुत्तनिपात १४३-१५२, मेत्तसुत्त

– इस प्रकार मैत्री ब्रह्मविहार करने वाला साधक कभी दार्शनिक उलझनों में नहीं पड़ता। वह शील और सम्यक-दर्शन संपन्न हो जाता है। काम-तृष्णा का संपूर्ण उच्छेद कर लेता है और पुनः गर्भ-शयन (पुनर्जन्म) के दुःख से नितांत विमुक्ति पा लेता है।

परिशुद्ध दान

मेरे प्यारे साधक साधिकाओ!

अपरिमित ब्रह्मविहारों का अभ्यास करना चाहिए।

अपरिमित मैत्री ब्रह्मविहार का अभ्यास करना चाहिए। अपरिमित करुणा ब्रह्मविहार का अभ्यास करना चाहिए। अपरिमित मुदिता ब्रह्मविहार का अभ्यास करना चाहिए। अपरिमित उपेक्षा ब्रह्मविहार का अभ्यास करना चाहिए। चारों अपरिमित ब्रह्मविहारों का अभ्यास करना चाहिए।

चारों अपरिमित ब्रह्मविहारों के अभ्यास का एक सरल तरीका है– **महाफलदायी त्रिकालिक त्रिविध परिशुद्ध दान।**

दान कैसे त्रिकालिक परिशुद्ध होता है? यदि दायक का चित्त दान देने के पूर्व, दान देते समय, और दान देने के पश्चात असीम प्रीति-प्रमोद से ओतप्रोत रहता है तो दान त्रिकालिक परिशुद्ध होता है।

– अङ्गुत्तरनिकाय २.६.३७, छळङ्गदानसुत्त

दान कैसे त्रिविध परिशुद्ध होता है? जब दान देनेवाला शुद्ध शील संपन्न हो; जब दान लेने वाला शुद्ध शील संपन्न हो; जब जो कुछ दान दिया जा रहा है, वह परिमाण में चाहे थोड़ा हो या बहुत; कीमत में भी चाहे कम हो या अधिक, परंतु हो शुद्ध यानी अपनी मेहनत की, ईमादारी की, सम्यक आजीविका की कमायी का हो, तो दान त्रिविध परिशुद्ध होता है।

त्रिकालिक त्रिविध परिशुद्ध दान महाफलदायी होता है।

ऐसा दान ब्रह्मविहार के अभ्यास का कारण कैसे बन जाता है? तब बन जाता है जबकि दान में दी गयी वस्तु अथवा स्थान अथवा सहूलियत किसी एक व्यक्ति विशेष के लिए ही न होकर बल्कि समस्त भिक्षु-संघ के

लिए हो, समस्त श्रावक-संघ के लिए हो, समस्त साधक-संघ के लिए हो। सार्वजनीन हो। सबके हितसुख के लिए हो।

ऐसे दान के कारण दायक का चित्त यह सोच कर अपरिमित मैत्री से भर जाता है कि मेरे इस दान से अनगिनत लोग सुखलाभी हो रहे हैं या होंगे; धर्मलाभी हो रहे हैं या होंगे। उसका चित्त अपरिमित करुणा से भर जाता है कि संसार में कितने लोग दुखियारे हैं जिन्हें इस दान से दुःख विमुक्ति मिलेगी, सुखलाभ मिलेगा, धर्म लाभ मिलेगा।

उसका चित्त अपरिमित मुदिता से भर जाता है कि अहो! मेरे इस दान से कितने लोग सुखलाभी, धर्मलाभी हो कर प्रसन्न हो रहे हैं, मुदित हो रहे हैं।

उसका चित्त अपरिमित उपेक्षा से भर जाता है कि मेरे इस दान की कोई प्रशंसा करे या निंदा, मुझे इससे यश मिले या अपयश, मुझे सरोकार नहीं है। यह दान मेरी प्रशंसा-प्रशस्ति, यश-कीर्ति या मान-सम्मान के लिए नहीं है। **शुद्ध धर्म चेतना से दिया हुआ यह दान मात्र परहित के लिए है।**

इस प्रकार साधको! परिशुद्ध दान द्वारा चारों ब्रह्मविहारों का अभ्यास किया जाता है।

साधको! अपरिमित ब्रह्मविहारों का अभ्यास करना चाहिए।

अपरिमित ब्रह्मविहारों का अभ्यास हमारे लिए अतीव मंगलदायी है, कल्याणदायी है।

दान-कथा

१९ जनवरी, १९७२ के दिन परम पूज्य गुरुदेव ऊ बा खिन की प्रथम पुण्य-तिथि के अवसर पर, बोधगया की पावन धरती पर बृहद दान-यज्ञ का आयोजन किया गया। सभी दानों में श्रेष्ठतम, प्रणीततम, महत्तम दान धर्म-दान होता है। अतः दो विशालकाय धर्म-यज्ञों का संचालन किया गया जिनसे देश-विदेश के सैंकड़ों लोग धर्मलाभी हुए। साथ ही साथ आमिष-दान यानी भौतिक-दान का भी आयोजन किया गया। भोजन, वस्त्र, मुद्रा एवं अन्य आवश्यक वस्तुओं का भी दान दिया गया। इस दान-यज्ञ में समस्त भारत के अनेक वयोवृद्ध भिक्षु पधारे, श्रमण-ब्राह्मण पधारे और उन्होंने श्रद्धालु दायकों को दान के अपूर्व पुण्य का शुभ अवसर प्रदान किया। सुदूर आसाम से, कलकत्ते से, नागपुर से, लुंबिनी से, काठमांडू से, इटावा से, वाराणसी से, नालंदा से पधारे हुए विद्वान तपस्वी स्थविरों, महास्थविरों ने दान ग्रहण करने की अनुकंपा की। ऐसे ऐसे महाश्रमण जिन्होंने कि धर्म समझने और समझाने में, पालन करने और कराने में अपना सारा जीवन लगा दिया है। दान के पात्र अच्छे हों तो पुण्य अधिक फलदायी होता है। वैसे ही जैसे कि भूमि उर्वरा हो तो बोया हुआ बीज अच्छे फल देता है।

इसके अतिरिक्त बोधगया की विपन्न प्रजा में से सैकड़ों लोगों को भोजन-दान दिया गया। अनेकों को वस्त्र-दान दिया गया।

अनेक साधकों ने इस बृहद दान-यज्ञ में धर्म-चेतना से भाग लिया। दान की शुद्धता इसी में है कि वह धर्म-चेतना से दिया जाय। यही दान का महाफल है जो कि हमारे रोगी चित्त को निरोगी बनाता है। कृपणता, कठोरता, कटुता, स्वार्थपरता, संकुचितता और नीरसता से भरे हुए चित्त को उदार, मृदुल, कोमल, सौम्य, विशाल, परमार्थी और सरस बनाता है। यही चित्त की स्वस्थता है।

दान देना गृहस्थों का बुनियादी धर्म है। इस देश की प्राचीनतम धार्मिक परंपरा में सदा से दान का विशिष्ट महत्त्व रहा है। अतीत काल में सभी धन संपन्न गृहस्थ बृहद दान-यज्ञों का आयोजन करते रहे हैं। पुरातन युग के सद्गृहस्थ ऋषि-महर्षि अष्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र यमदग्नि, अङ्गिरस, भारद्वाज, वशिष्ठ, काश्यप आदि सभी दान के महायज्ञ रचाते रहे हैं। पूर्वकाल में महाराज वैस्सन्तर और पश्चात्काल में महाराज हर्ष जैसे महादानी सर्वस्व दान का उच्च आदर्श स्थापित करते रहे हैं। कर्ण और हरिश्चंद्र का दान बहुविश्रुत है। उनकी दान-चेतना बड़ी उदात्त थी। सबकी दान-चेतना वैसी ही उदात्त होनी चाहिए, निर्मल होनी चाहिए। समाज की विशिष्ट रचना-व्यवस्था के कारण प्रजा का धन राजाओं और धनपतियों के पास संगृहीत होता रहता है। यह धन एक जगह संगृहीत ही रहे तो रुके हुए जल के समान सड़ने लगता है। सारे राष्ट्र को अस्वस्थ बनाता है। बहते नीर की तरह आता रहे और जाता रहे तो इसकी निर्मलता बनी रहती है। यही समझकर दान देने वाला अनुचित परिग्रह के दोष से बचने के लिए, अपने संगृहीत धन को राष्ट्र का धन मान कर "संविभाग" के हेतु दान देता था ताकि इस एकत्र हुए धन का सब लोग बांट कर उपभोग कर सकें। यह साम्य बुद्धि सामाजिक समृद्धि का संतुलन बनाये रखती थी और उसे विषम होने से बचाती रहती थी। संपन्न दाता अपनी धर्म-बुद्धि और कर्त्तव्य-बुद्धि से ही समय-समय पर धन का "संविभाग" करता रहता था। बदले में कुछ पाने की इच्छा से नहीं। औरों को हीन मान कर अपने अहंभाव की पुष्टि के लिए नहीं। यही दान की श्रेष्ठता थी। यही दान की शुद्धता थी।

विचेय्य दानं दातब्बं यत्थ दिन्नं महप्फलं।

– धम्मपद अट्ठकथा २.१८०, देवोरोहणवत्थु

– धर्म बुद्धि द्वारा भली भांति सोच समझ कर दिया गया शुद्ध दान महाफलदायी होता है।

तो हम भी धर्मबुद्धि द्वारा सोच समझ कर ही दान देना सीखें।

दान दो प्रकार के होते हैं –

१. वट्टमूलक दान यानी भवचक्र में उलझाये रखने वाला दान।

२. विवट्टमूलक दान यानी भवचक्र से बाहर निकाल देने वाला दान। सही धर्म-चेतना वाला व्यक्ति भवचक्र से छुटकारा दिलानेवाला दान ही देता है। भवचक्र में बांधने वाला नहीं।

– मज्झिमनिकाय अट्ठकथा २.४०७, महातण्हासङ्खयसुत्तवण्णना

जैसे अन्य सभी कर्मो का, वैसे ही दान-कर्म का भी चित्त की चेतना से ही मूल्यांकन होता है। चित्त की जैसी चेतना होती है, वैसा ही कर्म-बीज होता है और उसी के अनुरूप प्रकृति फल पैदा करती रहती है। भवचक्र को काटने वाला विवट्टमूलक चित्त रागविहीन होता है, द्वेषविहीन होता है, मोहविहीन होता है। ऐसे चित्त से दिया गया दान ही विवट्टमूलक दान होता है, लोकचक्र को छिन्न-भिन्न करने वाला होता है। ऐसा दान देने में हम अपना किंचित भी स्वार्थ नहीं देखते। दान पाने वाले का हितसुख देख कर मुदित होते हैं। जब हम औरों के मोद से मुदित होते हैं तो हमारा चित्त निर्मल होता है, मृदुल होता है। स्वार्थपरक संकुचितता और कठोरता से मुक्त होता है।

लेकिन दान देते हुए जब हम स्वहित के लिए किसी फल की कामना करते हैं तो वह रागरंजित चित्त वट्टमूलक होता है, भवचक्र बनाने वाला होता है। ऐसी चेतना से दिया गया दान भवचक्र बढ़ाने वाला होता है। दान के फलस्वरूप लौकिक सुख-वैभव की कामना करें, कीर्तिपथ की कामना करें, मान-सम्मान की कामना करें, लाभ-सत्कार की कामना करें, स्वर्ग-अपवर्ग की कामना करें, तो इन कामनाओं से अभिभूत हुआ चित्त बंधनयुक्त ही होता है, बंधनमुक्त नहीं। इस दान का फल बांधने वाला ही होता है, खोलने वाला नहीं।

अतः रागरंजित चित्त से दान देना बुरा है। परंतु उससे भी बुरा है द्वेष-दूषित चित्त से दान देना। वह तो हमारे लिए और भी अनर्थ का कारण बन जाता है। धर्म के नाम पर पाप कमाने वाली क्रिया हो जाती है। दिया गया धन तो खोते ही हैं, परंतु साथ-साथ अकुशल चित्त के आधार पर किया गया कर्म हमारे अमंगल और अकुशल का हेतु बनता है।

उदाहरणों से समझें कि हम द्वेष-चित्त से दान कैसे देते हैं?

एक भिखमंगा मेरे दरवाजे पर खड़ा हो कर पुकार रहा है– "बाबा! पैसा दे। बाबा! पैसा दे।" मैं उसकी इस बार-बार की पुकार से झल्ला कर उसकी ओर पांच पैसे का सिक्का फेंकता हूं कि बला टले। उस समय मेरा चित्त क्रोध और घृणा से भरा होता है।

कुछ भाई किसी स्कूल, अस्पताल या आश्रम बनाने के लिए चंदा जमा करने मेरी दूकान पर आये हैं। उन्हें देखते ही मैं तमतमा उठा और बड़बड़ाने लगा– "चंदा चंदा। जब देखो तब चंदा। दो मुनीमजी, इन्हें पांच रुपए और पिंड छुड़वाओ।" मेरा मन रुपए दिलवाते हुए आक्रोश से भरा है। अप्रिय चंदेवालों से शीघ्र छुटकारा पाने के लिए व्याकुल है।

किसी मंत्री या राजनेता ने मुझे अपने घर या दफ्तर बुला कर कह दिया है कि अमुक चंदे में इतने रुपए देने होंगे। मुझे उस चंदे में जरा भी रुचि नहीं है। परंतु भय से भीत हूं। न दूंगा तो अगला कोटा परमिट, लाइसेंस नहीं मिलेगा। मुझे किसी जांच में उलझा कर मेरा व्यापार चौपट कर दिया जायगा। इस डर से दान देता हूं।

मेरे कल्याण मित्र ने कहला भेजा है कि इस काम में तुम्हें इतना दान देना चाहिए। मैं देना तो नहीं चाहता, परंतु लिहाज संकोच के मारे देता हूं।

मेरे अन्य भाइयों ने किसी काम में दान दिया है। मुझे उसमें दान देने की जरा भी इच्छा नहीं है। परंतु नहीं दूंगा तो मेरी प्रतिष्ठा को धक्का लगेगा। लोकनिंदा होगी। इस भय से दान देता हूं।

मेरे प्रतिद्वंद्वी ने किसी क्षेत्र में इतना दान दिया है, जिससे उसकी कीर्ति बढ़ी है। इससे मेरे मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। उसके गर्व-भंजन के लिए और उसे नीचा दिखाने के लिए, अंहकार से चूर होकर मैं उससे अधिक दान देता हूं।

इस प्रकार झुंझलाहट, चिड़चिड़ाहट, घृणा, भय, लिहाज, संकोच, प्रतिस्पर्द्धा, ईर्ष्या, वैमनस्य, दर्प, अभिमान आदि दौर्मनस्यपूर्ण चेतना से दान

देता हूं और देने के बाद उसे याद करके पश्चाताप करता हूं, मन मलिन करता हूं तो ऐसी दुर्मन चेतना का दान मेरे लिए न केवल हितकारी ही नहीं होता, बल्कि मेरे अमंगल अहित का भी कारण बनता है।

धर्म-चेतना से किये गये सभी कर्म मंगलकारी हैं। अधर्म चेतना से किये गये सभी कर्म अमंगलकारी हैं। अतः धर्म-चेतना से दिया गया दान मंगलकारी है। अधर्म-चेतना से दिया गया दान अमंगलकारी है। इसलिये सदा धर्म-चेतना से ही दान दें। धर्म-चेतना से दिये गये दान से चित्त त्याग भाव से भरा होता है। परहित परसुख के मोद भाव से भरा होता है। त्रैकालिक प्रसन्नता से भरा रहता है।

दान देने के पूर्व मन में ऐसे ही मोदकारी भाव जागते रहते हैं कि मैं दान दूंगा! मेरे दान से कितनों का भला होगा! कितनों का कल्याण होगा! दान देते हुए भी मन इन मुदित भावों से ओतप्रोत रहता है कि मैं दान दे रहा हूं! गृहस्थ धर्म का पालन कर रहा हूं। मेरे इस दान से ग्रहीता का यह हितसुख होगा। अन्य अनेकों का भी यह हितसुख होगा। दान देने के पश्चात भी मेरा मन बार-बार इन्हीं शुभ भावों से उर्मिल होते रहता है कि अहो! मैंने उत्तम भोजन का दान दिया जिसे खाकर, उत्तम वस्त्र का दान दिया जिसे पहन कर, उत्तम दवा का दान दिया जिसका सेवन कर, ग्रहीता शरीर और मन से स्वस्थ सबल होगा और शील समाधि-प्रज्ञा का अभ्यास कर अपना मंगल साधेगा और अनेकों के मंगल का कारण बनेगा। मैंने इस कुटिया का दान दिया जिसमें रह कर साधक शील, समाधि, प्रज्ञा का अभ्यास करेगा समथ और विपश्यना साधना भावना का अभ्यास कर निर्वाण रस की सुख-शांति का आस्वादन करेगा और अनेकों की सुख-शांति का कारण बनेगा। मेरे दान का ग्रहीता कोई जीवन्मुक्त अरहंत हो अथवा अरहंत-पथ का अनुगामी कोई धर्मभावी संतपुरुष ही हो तो मेरा मन असीम आह्लाद-प्रह्लाद से भर उठेगा– अहो! मेरा सौभाग्य है मेरे दान से ऐसा संतपुरुष अधिक काल तक सबल स्वस्थ रह कर जीयेगा और इससे कितनों का कल्याण होगा! इसने मेरा दान स्वीकार कर मुझ पर असीम अनुकंपा की है!

इस प्रकार दान देने के पूर्व भी, देते हुए भी और देने के पश्चात भी दायक अपने निर्मल चित्त को प्रसन्नता से भरता है और उसे मंजुल मृदुल बनाता है।

पुब्बेव दाना सुमनो, ददं चित्तं पसादये।
दत्वा अत्तमनो होति, एसा यञ्ञस्स सम्पदा॥

– अङ्गुत्तरनिकाय २.६.३७, छळङ्गदानसुत्त

– दान देने वाला देने के पूर्व सुमन होता है, देते हुए चित्त को प्रसन्न प्रसाद रस से भरता है और देने के बाद चित्त मुदित करता है। ऐसी है, धर्म-चेतना वाले दान-यज्ञ की सुख-संपदा!

दान-चेतना

कैसा दान सार्थक होता है? जिसे देकर मन निर्मल हो।

क्या दान देकर मन मैला भी हो सकता है? अवश्य, विवेक के साथ दान न हो तो दानी का मन मैला हो ही जाता है। अविवेकी का दान उसके बंधन का कारण बनता है, वैसे ही जैसे कि अविवेकी की श्रद्धा, जैसे कि अविवेकी का प्रेम।

विवेक न हो तो दान देने की शुद्ध धर्म-चेतना जाग ही नहीं सकती। ऐसा व्यक्ति दान दे भी तो दुर्मन से देता है। उसका मन अहंकार से, चिड़चिड़ाहट से, घृणा से, ईर्ष्या से, लोभ से अथवा भय से भरा होता है। ऐसा दान अच्छा फल कैसे दे सकता है भला? दुर्मन का फल तो दुखद ही होगा, सुखद नहीं। विवेक हो तो दान को निष्काम बनाये रखेगा। सकाम भक्ति और सकाम प्रेम की तरह उसे सकाम बना कर कलुषित नहीं होने देगा। उसकी पवित्रता नष्ट नहीं होने देगा। यदि दान का उद्देश्य यश हो, कीर्ति हो, कोई लौकिक प्रतिफल हो, किसी देवलोक की कामना हो तो ऐसा राग-रंजित दान बांधने वाला होता है। परंतु अपने इस कुशल कर्म को त्याग और अपरिग्रह का रूप देकर आस्रव-क्षय का हेतु बना लेता है, तो बांधने वाला कदापि नहीं होगा।

इदं मे पुञ्ञकम्मं आसवक्खय वहं होतु।

अथवा

इदं मे पुञ्ञकम्मं निब्बाणस्स पच्चयो होतु।

विवेकवान के लिए दान का पुण्य-कर्म आस्रव-क्षय और निर्वाण का प्रत्यय ही होता है क्योंकि वह अपरिग्रह के लिए होता है, बोझ हल्का करने के लिए होता है, बोझ बांधने के लिए नहीं। हां, यह ठीक है कि शुद्ध

अपरिग्रह बुद्धि से दिया हुआ दान लोकोत्तर निर्वाण की ओर ले जाने वाला होने के साथ-साथ लोकीय लाभ भी पहुँचाता ही है। वैसे ही जैसे धान की खेती करें तो चावल के साथ-साथ चारे के लिए भूसी और डंठल भी प्राप्त होते ही हैं। चीनी की फैक्ट्री चलायें तो चीनी के साथ-साथ मोलासिस (राब) पैदा होता ही है। इसी प्रकार शुद्ध दान भी समस्त मानवी और दैवी संपत्तियां देते हुए ही नैर्वाणिक संपत्ति उपलब्ध करवाता है।

मानुस्सिका च सम्पत्ति, देवलोके च या रति।
या च निब्बानसम्पत्ति, सब्बमेतेन लब्भति॥

– खुद्दकपाठ ८.१३, निधिकण्डसुत्त

निरभिमान मन से, मैत्री-करुणायुक्त चित्त से और अपरिग्रह बुद्धि से दिया गया दान निर्वाणगामी उत्तर धर्मो के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार करता है। शुद्ध दान के दोनों लाभ हैं– लोकीय भी और लोकोत्तर भी। विवेकशील दानी अपने दान के इन दोनों पक्षों को भलीभांति समझता है।

दान देने के पूर्व वह प्रज्ञापूर्वक सोचता है, समझता है कि मुझे दान देना क्यों आवश्यक है? और भलीभांति सोच-समझकर दान देता है तो स्वच्छ-सुमन चित्त से दान देता है। सुमन का फल स्वतः सुखद ही होता है– लोकीय भी, लोकोत्तर भी।

विवेकशील व्यक्ति जब अपने चारों ओर अभावग्रस्त प्राणियों को देखता है तो जो कुछ पास हो, उसका कुछ हिस्सा उन प्राणियों को बांटकर ही शेष का उपभोग करता है। प्राणियों में भी यदि मनुष्य अभावग्रस्त हो तो उसकी आवश्यकता पूरी कर अपने को अधिक धन्य मानता है। वह इस सच्चाई को समझता है कि अपने पास जो कुछ है उसे अकेले ही उपभोग करना धर्म-नीति के विरुद्ध आचरण है। यदि अपने पास कम है तो भी उसमें का भले थोड़ा-सा ही हिस्सा सही, अन्य किसी को देकर शेष को ही स्वयं ग्रहण करना धर्म है और जब अपने पास आवश्कता से अधिक हो तब तो बिना बांटे स्वयं ही उसका उपभोग करना घोर पाप है। ऐसे उपभोग में अपना अमंगल है, पराभव है, पतन है।

पहूतवित्तो पुरिसो, सहिरञ्ञो सभोजनो।
एको भुञ्जति सादूनि, तं पराभवतो मुखं॥

– सुत्तनिपात १०२, पराभवसुत्त

– जिसके पास प्रभूत मात्रा में धन-संपत्ति हो, हिरण्य-सुवर्ण हो, भोज्य-पदार्थ हो और वह अकेला ही उनका उपभोग करे तो यह उसके पतन का कारण बनता है।

विवेकशील व्यक्ति इस बुराई से बचता है, इस पतन से बचता है।

विवेकशील व्यक्ति भलीभांति समझता है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, समूह में रहनेवाला प्राणी है। अतः मुझे औरों के साथ रहना होगा। मैं औरों से तो अनेक प्रकार की सुख-सुविधाएं प्राप्त करता रहता हूं, परंतु बदले में औरों की सुख-सुविधा के लिए अपना दायित्व निभाता हूं या नहीं? यदि मेरे पास कुछ है और आवश्यकता से अधिक है तो उसे औरों को बांटकर ही अपना दायित्व निभा पाऊंगा। ऐसा समझ कर वह जिस सामाजिक व्यवस्था में रहता है, उस व्यवस्था की पुरातन धर्म-परंपरा को निभाता है। इस सामाजिक व्यवस्था में आर्थिक विषमता होनी स्वाभाविक है। यह विषमता इस व्यवस्था का अनिवार्य दूषण है। समझदारी यही है कि इस सामाजिक व्यवस्था के रहते इस दूषण को जितना दूर किया जा सके, करते रहें। इसीलिए पुरातन काल में यज्ञों का विधान था। हर व्यक्ति यज्ञ करता था। यजन करता था, यानी त्याग करता था, बलिदान करता था। औरों को बांटता और तदनंतर ही स्वयं उपभोग करता था। अनावश्यक परिग्रह से बचते हुए किसी अन्य की वस्तु पर लोभ की दृष्टि नहीं रखता था। परंतु धीरे-धीरे लोगों का विवेक मंद पड़ा। स्वेच्छा से प्रज्ञापूर्वक अपने पास आवश्कता से अधिक आयी हुई संपदा को औरों के लिए यजन कर देनेवाली प्रज्ञा क्षीण पड़ने लगी। अतः दान की यह प्रथा मंद पड़ने लगी। इसे पुनर्जीवित करने के लिए ही कुछ समाज-नेताओं ने इस पर देवभक्ति का रंग-रोगन चढ़ाया होगा। देवी-देवता को प्रसन्न-संतुष्ट करने के लिए यजन करो, त्याग करो। जिसके पास जो कुछ संचित हो गया है, उसका बलिदान

करो। देवताओं के नाम पर बलि चढ़ाओ, दान दो। और देवताओं के नाम पर जो कुछ त्याग किया जाता वह प्रजा में यानी समाज में ही बंट जाता था। इस प्रकार सम-विभाग की यह कल्याणकारी प्रथा दैवी यज्ञों के नाम पर चल पड़ी होगी। पशुपालन और कृषिप्रधान समाज में जिसके पास अधिक संख्या में पशु एकत्र हो जाते थे और अन्न-घृत एकत्र हो जाता था, वह विवेकपूर्वक उनका यजन करके अपना पशुधन व अन्न-धन समाज के अन्य लोगों में बांट देता था। जब यही यजन का काम देवताओं के नाम पर होने लगा तो यजमान इन्हें देवता को बलिदान करता था यानी अर्पित करता था, पर अंततः वह बंट जाता था समाज के लोगों में ही, जिससे कि सामाजिक विषमता बढ़ने नहीं पाती थी। समय-समय पर इस प्रथा में विभिन्न विकृतियां आयीं, दूषण आये और समय-समय पर पुनः सुधार भी होते गये। दानी ने जब-जब अपना विवेक खोया, तब-तब मन की निर्मलता खोयी और दान का पवित्र उद्देश्य नष्ट कर दिया। जब-जब उसका विवेक जागा, तब-तब उसने दान को सार्थक बनाया, सुफलदायी बनाया।

विवेकशील व्यक्ति यह समझता है कि दान अपरिग्रह के लिए है। किसी एक के पास अधिक जमा हो जाय तो बाकियों को उसका अभाव भुगतना ही पड़ता है। अतः समय-समय पर अपरिग्रह बुद्धि से, कर्तव्य बुद्धि से और बिना अहंकार के अपने पास संचित संपदा को औरों में बांटते रहना चाहिए ताकि समाज में विषमता न बढ़े और परिणामतः विग्रह-विद्वेष न बढ़े। दान द्वारा भारग्रस्त व्यक्ति भारमुक्त होता है और अभावग्रस्त अभावमुक्त।

दान जरूरतमंद को ही दिया जाना चाहिए। परंतु जरूरतमंदों में भी दान के लिए योग्य पात्र चुना जाता है। विवेकशील व्यक्ति जानता है कि जैसे उपजाऊ खेत में बोया हुआ बीज महाफलदायी होता है, वैसे ही उर्वर क्षेत्र में बोया हुआ दान का बीज भी महाफलदायी होता है। वह जानता है कि जो खेत असम हो, जिसमें बहुत तृण उगे हों, झाड़-झंखाड़ उगे हों, जिसमें बहुत कंकड़-पत्थर हों, जिसमें जुताई नहीं हुई हो, जो बहुत चट्टानी हो, जिसमें पानी आने का रास्ता न हो, जिसमें से पानी बाहर निकलने का

रास्ता न हो, जिसमें न नाली हो, न मेड़ हो – ऐसे ऊसर खेत में बोया हुआ बीज महाफलदायी नहीं होता। इसी प्रकार जिस व्यक्ति की वाणी शुद्ध न हो, जिसके शारीरिक कर्म शुद्ध न हों, जिसकी आजीविका शुद्ध न हो, जिसके प्रयत्न-प्रयास शुद्ध न हों जिसकी स्मृति शुद्ध न हो, जिसकी समाधि शुद्ध न हो, जिसका चिंतन-मनन शुद्ध न हो, जिसकी दर्शन-दृष्टि शुद्ध न हो, ऐसे दुर्जन, दुश्शील, दुराचारी, दुःसमाधिस्थ और दुष्प्रज्ञ व्यक्ति को दिया हुआ दान महाफलदायी नहीं हो सकता।

जो खेत समतल हो, झाड़-झंखाड़-तृणविहीन हो, कंकड़-पत्थर विहीन हो, जो चट्टानी नहीं हो, जिसमें गहरी जुताई हुई हो, जिसमें पानी लाने का रास्ता हो, जिसमें से पानी निकालने का रास्ता हो, जिसमें आवश्यक नाली हो, मेड़ें हों, वैसे उपजाऊ खेत में बोया हुआ बीज सचमुच महाफलदायी होता है। ठीक इसी प्रकार जिस व्यक्ति की वाणी शुद्ध हो, शारीरिक कर्म शुद्ध हो, आजीविका शुद्ध हो, प्रयत्न-प्रयास शुद्ध हों, स्मृति शुद्ध हो, समाधि शुद्ध हो, चिंतन-मनन शुद्ध हो, दर्शन-दृष्टि शुद्ध हो, ऐसे सज्जन, सुशील, सदाचारी, सुसमाहित चित्त, सप्रज्ञ व्यक्ति को दिया हुआ दान सचमुच महाफलदायी होता है। ऐसा व्यक्ति चाहे जिस जाति, कुल, वर्ण, वर्ग, संप्रदाय का हो, परंतु वह हर माने में श्रमण ही है, ब्राह्मण ही है, पवित्र ही है, पावन ही है। ऐसा व्यक्ति धर्म-पथ का पथिक है। अतः दान का बीज बोने के लिए सचमुच उपजाऊ पुण्य-क्षेत्र है। ऐसा धर्म-पथिक जब चित्त-विशुद्धि की प्रथम अवस्था को प्राप्त कर मुक्ति के स्रोत में पड़ जाय यानी स्रोतापन्न हो जाय तो और उपजाऊ हो जाता है, महत्तर पुण्य-क्षेत्र हो जाता है। यही व्यक्ति आगे बढ़ता हुआ अपने अंतर के सूक्ष्म बंधनों से मुक्ति पाता हुआ सगदागामी हो जाय, अनागामी हो जाय तो और अधिक उपजाऊ हो जाता है। यही व्यक्ति जब अरहंत हो जाय, स्थितप्रज्ञ होकर जीवन्मुक्त हो जाय, सारी ग्रंथियों से पूर्णतया छुटकारा पाकर निर्ग्रंथ हो जाय, सभी विकारों को जीतकर जिन हो जाय, अनुत्तर सम्यक संबोधि प्राप्त कर सम्यक संबुद्ध हो जाय तो पवित्रता की उच्चतम अवस्था पर पहुँच जाता है। अतः महत्तम उर्वरा पुण्यभूमि बन जाता है।

विवेकशील दानी इस बात को समझता है कि धर्मवान व्यक्ति मानव समाज की अनमोल निधि है। धर्मवान व्यक्ति स्वयं तो सुख-शांति का जीवन जीता ही है, औरों की सुख-शांति का भी कारण बनता है, औरों को भी धर्मवान बनने के लिए प्रेरित करता है, मार्गदर्शन देता है। इसलिए जो जितना-जितना धर्मवान है, वह समाज के लिए उतना-उतना ही उपयोगी है, कल्याणकारी है। अतः उतना-उतना ही अधिक पूजन-वंदन योग्य है, आदर-सत्कार योग्य है, दान-दक्षिणा योग्य है।

जिस समाज में शील-गुण-संपन्न धार्मिक व्यक्तियों की अवहेलना व अवमानना होने लगे और शील-गुण-विहीन व्यक्तियों का जाति, कुल, गोत्र, धन, सत्ता आदि के नाम पर मान-सम्मान होने लगे, उस समाज में धर्म का अवमूल्यन होने लगता है। परिणामतः वह समाज धर्म-विमुख होने लगता है। उस समाज में न्याय-नैतिकता का ह्रास होने लगता है। उस समाज के लोग मिथ्याभिमान के शिकार होने लगते हैं और अपने पतन के स्वयं कारण बनने लगते हैं।

जातित्थद्धो धनत्थद्धो, गोत्तत्थद्धो च यो नरो।
सञ्ञातिं अतिमञ्ञेति, तं पराभवतो मुखं॥

– सुत्तनिपात १०४, पराभवसुत्त

– जो व्यक्ति जन्म-जाति का, धन-संपदा का, कुल-गोत्र का अभिमान करता हुआ अपने समाज के अन्य बंधुओं का निरादर करने लगता है तो यह उसके पतन का कारण बनता है।

विवेकवान व्यक्ति समझता है कि वह जब किसी धर्मनिष्ठ व्यक्ति को दान देता है तो उसका मन श्रद्धाभाव से, दाक्षिण्यभाव से भर उठता है और ऐसी अवस्था में वह यही महसूस करता है कि इस धर्मनिष्ठ व्यक्ति ने मेरा दान स्वीकार कर मुझपर अनुग्रह किया है। दूसरी ओर जब वह किसी धर्म-विहीन व्यक्ति को दान देता है तो अपने मिथ्या अहं का पोषण करता हुआ यही महसूस करता है कि दान देकर मैं इस व्यक्ति पर अनुग्रह कर रहा

हूं। धर्महीन व्यक्ति की अपेक्षा धर्मनिष्ठ व्यक्ति को दान देते हुए चित्त की चेतना अधिक निर्मल रहती है और इसीलिए अधिक फलदायी होती है।

विवेकवान व्यक्ति यह भी समझता है कि व्यक्ति से समाज बड़ा है। व्यष्टि से समष्टि महान है। अतः किसी एक व्यक्ति विशेष की दान-सेवा की तुलना में सार्वजनीन दान सेवा और अधिक फलदायी होती है। एक व्यक्ति चाहे वह परम ज्ञानी सम्यक संबुद्ध ही क्यों न हो, उसके मुकाबले व्यक्तियों के समूह को यानी संघ को दिया गया दान अधिक फलदायी होता है। और संघ भी यदि धर्म-विहारियों का संघ हो, संतों का संघ हो, साधकों का संघ हो तो कहना ही क्या! दान का बीज बोने के लिए उससे अच्छा कोई क्षेत्र होता ही नहीं। वह अनुत्तर पुण्य क्षेत्र होता है।

विवेकशील व्यक्ति इस बात को बखूबी समझता है कि कालिक दान यानी अवसर पर दिया गया दान कल्याणकारी होता है। जैसे कि दुष्काल के समय, अग्निकांड के समय, बाढ़ के समय, महामारी के समय पीड़ितों को दिया गया दान। भूखे को भोजन का दान, नंगे को वस्त्र का दान, रोगी को औषधि का दान, बेघरबार को घरबार का दान फलदायी दान है। परंतु इन सामयिक दानों से, कालिक दानों से अधिक उत्तम अकालिक दान है, सार्वकालिक दान है और वह है धर्मदान जो कि सर्वदा सर्वहितकारी दान है। **सब्बदानं धम्मदानं जिनाति** (धम्मपद ३५४, तण्हावग्ग) – धर्म का दान सर्वोपरि दान है।

किसी को धर्म का दान देने का अर्थ यह नहीं कि उसे किसी संप्रदाय-विशेष में दीक्षित कर लिया जाय। सार्वकालिक, सार्वदेशिक धर्म सदा सार्वजनीन होता है। वह किसी संप्रदाय के क्षुद्र दायरे में बांधा नहीं जा सकता। अतः धर्म का दान किसी संप्रदाय में लपेटने के लिए नहीं, बल्कि संप्रदाय के घेरे से ऊंचा उठाकर शील, समाधि और प्रज्ञा में स्थापित करने के लिए होता है, लोगों को जाति, कुल, गोत्र, धन, सत्ता आदि के संकुचित दायरों से बाहर निकाल कर शुद्ध धर्म की महत्ता के क्षेत्र में स्थापित करने के लिए होता है। समाज में शील, समाधि और प्रज्ञा को प्रतिष्ठापित करने के

लिए होता है। कोई व्यक्ति शीलवान न हो तो उसे शील में स्थापित करने में, कोई शीलवान हो पर समाधिवान न हो तो उसे समाधि में स्थापित करने में, कोई शीलवान हो, समाधिवान हो पर प्रज्ञावान न हो तो उसे प्रज्ञा में स्थापित करने में, उसे विमुक्ति रस का रसास्वादन करवाने में, निर्वाण का साक्षात्कार करवाने में सहायक होना ही सही माने में धर्मदान है, जो कि सब के लिए समान रूप से सर्वदा कल्याणकारी है।

धर्मदान का प्रारंभ पुस्तकों द्वारा या प्रवचनों द्वारा धर्म का संदेश लोगों तक पहुँचाना होता है ताकि इससे उनमें धर्म के प्रति आकर्षण जागे, धर्म धारण करने के लिए प्रेरणा जागे और उससे मार्गदर्शन मिले। श्रुत धर्म का, परियत्ति धर्म का यह दान लाभदायक होता है। पर इससे भी उन्नत और विशुद्ध धर्मदान तो धर्म-धारण करने का अभ्यास करवाना है। इससे जन-जन का वास्तविक और स्थायी लाभ होता है। यह दान जब किसी एक व्यक्ति व एक वर्ग के लिए न होकर सार्वजनीन हो तो सर्वोत्तम फलदायी होता है।

धर्मदान में तन, मन, धन से सहयोगी होना धर्मदान में भागीदार बनना है। विवेकवान व्यक्ति जानता है कि यदि मैं धर्म सिखा सकने की क्षमता नहीं रखता तो धर्म प्रशिक्षण के काम में सहयोगी बनकर ही सेवालाभ ले सकता हूं। अपना धर्मदान संपन्न कर सकता हूं। यह समझकर वह धर्मदान में सहयोगी बनता है। धर्म सीखने वालों के लिए भोजन, निवास तथा अन्य आवश्यक सुविधाएं प्राप्त करवाने में योगदान देता हुआ, धर्म शिविरों में सभी प्रकार की धर्मसेवा करते हुए, शुद्ध धर्मदान में सहभागी बनता है। साधकों के लिए भोजन का दान, ध्यान-कुटी का दान अन्यान्य आवश्यक सेवा सुविधाओं का दान धर्मदान ही है।

परंतु विवेकवान व्यक्ति साथ-साथ यह भी समझता है कि सभी दानों से कहीं अधिक फलदायी है – स्वयं धर्म में स्थित होना, स्वयं शील, समाधि और प्रज्ञा में स्थापित होना, स्वयं अध्यात्म की ओर अग्रसर होना। कहीं दान को ही सब कुछ मानकर अध्यात्म की अगली मंजिलें हासिल करने में अपने

लिए दीवारें न खड़ी कर ले। दान धर्म का पहला कदम है, आवश्यक कदम है, पर अंतिम कदम नहीं ही है। यह ठीक है कि यदि इस पहले कदम में ही कमजोरी रहेगी तो अगले कदम मजबूत नहीं हो सकेंगे। यह समझकर समझदार आदमी, जिसे धर्म-पथ पर चलना है, जिसे धर्म का सुख-शांतिमय जीवन जीना है, जिसे धर्म की अंतिम मंजिल तक पहुँचना है, वह दान को अपने जीवन का आवश्यक अंग बनाता है, अनिवार्य अंग बनाता है और साथ ही साथ शील, समाधि, प्रज्ञा में उत्तरोत्तर पुष्ट हुए जाता है।

दान को जीवन का आवश्यक अंग बनाने के लिए प्रत्येक विपश्यी गृही साधक को चाहिए कि वह अपनी आय में से अपनी सुविधानुसार अपने शक्ति-सामर्थ्य-अनुसार हर रोज अथवा हर वर्ष कुछ न कुछ हिस्सा शुद्ध दान के लिए अवश्य निकाले। जिसकी आय कम है वह कम निकाल कर जरा भी हीन भाव का अनुभव न करे। चित्त की शुद्ध दान-चेतना ही फलदायी होती है, दान का परिमाण नहीं। जो समर्थ हैं वे अपनी दान-चेतना को संकुचित कर उसे कलुषित न कर लें। उदार चित्त से परंतु साथ ही साथ दंभहीन चित्त से दान देना सीखें।

दान कहां दें? वहीं जहां के प्रति अपनी धर्मप्रज्ञा उत्साहित करे। जहां के लिए मन में दान-चेतना जागे, पर दें अवश्य। जो गृहत्यागी हैं वे बहुजन हिताय बहुजन सुखाय शुद्ध निरामिष धर्मदान दे सकने की क्षमता प्राप्त करने में अग्रसर होते रहें और जो क्षमतावान हैं वे शुद्ध धर्मदान देते रहें।

शुद्ध सात्विक दान साधक के चित्त का आभूषण है, चित्त का अलंकार है, चित्त का हल्कापन है। दान-चेतना जाग्रत रखकर अपने चित्त को धर्म-विभूषित करें, उसे मंगलमार्गी बनायें।

पराभव सुत्त

जैसे विज्ञ गृहस्थ मांगलिक कर्मों में निरत रह कर उन्नतिपरायण होता है, वैसे ही अज्ञ गृहस्थ मांगलिक कर्मों से विरत रह कर और अमांगलिक कर्मों में निरत रह कर पतनोन्मुख होता है। एक बार किसी के पूछने पर भगवान ने पतनोन्मुखी होने के कारण समझाये –

पराभवन्तं पुरिसं, मयं पुच्छाम गोतम।
भगवन्तं पुट्ठुमागम्म, किं पराभवतो मुखं॥

– हम आप गौतम से पराभव (अवनति) की ओर जाने वाले पुरुष के विषय में पूछने आये हैं। भगवान! बतायें कि अवनति का क्या कारण है?

भगवान –

सुविजानो भवं होति, सुविजानो पराभवो।
धम्मकामो भवं होति, धम्मदेस्सी पराभवो॥

– उन्नतिशील व्यक्ति की पहचान सरल है। अवनतिगामी की भी पहचान सरल है। धर्म-प्रेमी की उन्नति होती है और धर्म-द्वेषी की अवनति।

असन्तस्स पिया होन्ति, सन्ते न कुरुते पियं।
असतं धम्मं रोचेति, तं पराभवतो मुखं॥

– जब किसी को असंतजन प्रिय लगते हैं और संतजन अप्रिय; जब उसे असंतों के आचरण रुचिकर प्रतीत होते हैं, तो यह उसकी अवनति का कारण है।

निद्दासीली सभासीली, अनुट्ठाता च यो नरो।
अलसो कोधपञ्ञाणो, तं पराभवतो मुखं॥

– जो व्यक्ति निद्रालु, सभा-समारोहों में जुटा रहने वाला, अनुद्योगी, आलसी और क्रोधी होता है, तो वह उसकी अवनति का कारण है।

यो मातरं पितरं वा, जिण्णकं गतयोब्बनं।
पहु सन्तो न भरति, तं पराभवतो मुखं॥

– जो व्यक्ति संपन्न होते हुए भी अपने वृद्ध एवं जीर्ण माता या पिता का भरण-पोषण नहीं करता है, तो वह उसकी अवनति का कारण है।

यो ब्राह्मणं समणं वा, अञ्ञं वापि वनिब्बकं।
मुसावादेन वञ्चेति, तं पराभवतो मुखं॥

– जब कोई मनुष्य किसी श्रमण, ब्राह्मण अथवा अन्य याचक को कुछ न देने की मंशा से झूठ बोल कर धोखा देता है, तब वह उसकी अवनति का कारण है।

पहूतवित्तो पुरिसो, सहिरञ्ञो सभोजनो।
एको भुञ्जति सादूनि, तं पराभवतो मुखं॥

– जब किसी के पास प्रचुर मात्रा में धन-संपत्ति हो, हिरण्य-सुवर्ण हो, भोजन-सामग्रियां हों, तब भी अकेला सुस्वादु पदार्थों का उपभोग करता हो, तब वह उसकी अवनति का कारण है।

जातित्थद्धो धनत्थद्धो, गोत्तत्थद्धो च यो नरो।
सञ्ञातिं अतिमञ्ञेति, तं पराभवतो मुखं॥

– जो व्यक्ति अपनी जाति, धन-संपदा और गोत्र का अभिमान करता है और इस प्रकार अहंकारवश अपने बंधुओं का निरादर करता है, तो वह उसकी अवनति का कारण है।

इत्थिधुत्तो सुराधुत्तो, अक्खधुत्तो च यो नरो।
लद्धं लद्धं विनासेति, तं पराभवतो मुखं॥

– जो व्यक्ति स्त्रियों में, शराब और जुए में रत रहता है, सारे कमाये धन को नष्ट करता है, तो वह उसकी अवनति है।

सेहि दारेहि असन्तुट्ठो, वेसियासु पदुस्सति।
दुस्सति परदारेसु, तं पराभवतो मुखं॥

– जो अपनी पत्नी से असंतुष्ट रहता है, वेश्याओं और परायी स्त्रियों को प्रदूषिआत करता है, तो वह उसकी अवनति का कारण है।

अतीतयोब्बनो पोसो, आनेति तिम्बरुत्थनिं।
तस्सा इस्सा न सुपति, तं पराभवतो मुखं॥

– वृद्ध व्यक्ति जब नवयुवती को (ब्याह) लाये और उसके प्रति अविश्वास एवं ईर्ष्या के कारण वह सो न सके, तो वह उसकी अवनति का कारण है।

इत्थिं सोण्डिं विकिरणिं, पुरिसं वापि तादिसं।
इस्सरियस्मिं ठपेति, तं पराभवतो मुखं॥

– जब किसी लालची तथा संपत्ति नष्ट करने वाली स्त्री या पुरुष को अपनी संपत्ति का प्रभुत्व दे दिया जाता है, तब वह उसकी अवनति का कारण है।

अप्पभोगो महातण्हो, खत्तिये जायते कुले।
सो च रज्जं पत्थयति, तं पराभवतो मुखं॥

– क्षत्रिय कुल में उत्पन्न परंतु अल्प संपत्तिशाली और महालोभी व्यक्ति जब राज्य पाने की कामना करता है, तो वह उसकी अवनति का कारण है।

एते पराभवे लोके, पण्डितो समवेक्खिय।
अरियो दस्सनसम्पन्नो, स लोकं भजते सिवन्ति॥

– सुत्तनिपात ९१-११५, पराभवसुत्त

– बुद्धिमान व्यक्ति संसार में अवनति के इन कारणों को भली प्रकार जानकर आर्य-दर्शन संपन्न होता है, वह इसी लोक में निर्वाणलाभी होता है।

मित्तानिसंस सुत्त

बोधिसत्त्व जब अपने पूर्व जीवनकाल में तेमिय राजकुमार के रूप में जन्मे तब उन्होंने अपने सारथी सुनंद को जिस मैत्री-धर्म का, मेत्ता भावना का उपदेश दिया, वह सभी गृहस्थ विपश्यी साधकों के लिए अपरिमित प्रेरणा का स्रोत है –

पहूतभक्खो भवति, विप्पवुट्ठो सकं घरा।
बहूनं उपजीवन्ति, यो मित्तानं न दुब्भति॥

– जो मित्रों के प्रति विश्वासघाती नहीं होता उसे अपने घर से प्रवास में जाने पर खाने-पीने की कमी नहीं रहती। वह बहुत धन कमाता है और अनेकों की जीविका का सहारा बनता है।

यं यं जनपदं याति, निगमे राजधानियो।
सब्बत्थ पूजितो होति, यो मित्तानं न दुब्भति॥

– जो मित्रों के प्रति विश्वासघाती नहीं होता वह जिस-जिस जनपद, निगम व राजधानी में जाता है, सर्वत्र सम्मानित होता है।

नास्स चोरा पसहन्ति, नातिमञ्ञेति खत्तियो।
सब्बे अमित्ते तरति, यो मित्तानं न दुब्भति॥

– जो मित्रों के प्रति विश्वासघाती नहीं होता उसे चोर परेशान नहीं करते। शासक उसका अनादर नहीं करते। वह सभी शत्रुओं पर विजय पा लेता है।

अक्कुद्धो सघरं एति, सभायं पटिनन्दितो।
ञातीनं उत्तमो होति, यो मित्तानं न दुब्भति॥

– जो मित्रों के प्रति विश्वासघाती नहीं होता वह शांत चित्त से अपने घर लौटता है। सभाओं में उसका अभिनंदन होता है। बंधु-बांधवों में वह श्रेष्ठ माना जाता है।

सक्कत्वा सक्कतो होति, गरु होति सगारवो।
वण्णकित्तिभतो होति, यो मित्तानं न दुब्भति॥

– जो मित्रों के प्रति विश्वासघाती नहीं होता वह औरों का सत्कार करता है और स्वयं सत्कृत होता है। औरों को गौरव देता है और स्वयं गौरवान्वित होता है। वर्ण-कीर्तिमान होता है। लोगों में प्रसिद्धि प्राप्त करता है।

पूजको लभते पूजं, वन्दको पटिवन्दनं।
यसो कित्तिञ्च पप्पोति, यो मित्तानं न दुब्भति॥

– जो मित्रों के प्रति विश्वासघाती नहीं होता वह औरों को पूजता है और स्वयं पूजित होता है। औरों की वंदना करता है और स्वयं वंदनलाभी होता है। उसका गुणानुवाद होता है व यश फैलता है।

अग्गि यथा पज्जलति, देवताव विरोचति।
सिरिया अजहितो होति, यो मित्तानं न दुब्भति॥

– जो मित्रों के प्रति विश्वासघाती नहीं होता वह अग्निशिखा सदृश प्रकाशवान होता है। देवता सदृश वर्चस्वमान होता है और श्री-वैभव संपन्न होता है।

गावो तस्स पजायन्ति, खेत्ते वुत्तं विरूहति।
वुत्तानं फलमस्नाति, यो मित्तानं न दुब्भति॥

– जो मित्रों के प्रति विश्वासघाती नहीं होता उसका गोधन बढ़ता है उसके खेत में बोये बीज बढ़ते हैं और उनमें लगे फल को वह खाता है।

दरितो पब्बतातो वा, रुक्खातो पतितो नरो।
चुतो पतिट्ठं लभति, यो मित्तानं न दुब्भति॥

– जो मित्रों के प्रति विश्वासघाती नहीं होता वह कभी असावधानीवश दर्रे या कंदरा में गिरता है, पर्वत से फिसलता है अथवा वृक्ष से पतित होता है तो उसे सहारा मिल जाता है और वह चोट से बच जाता है।

विरूळ्हमूलसन्तानं, निग्रोधमिव मालुतो।
अमित्ता नप्पसहन्ति, यो मित्तानं न दुब्भति॥

– जातक २.२२.१२-२१, मूगपक्खजातक (५३८)

– जो मित्रों के प्रति विश्वासघाती नहीं होता उसके शत्रु उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते जैसे कि तेज हवा गहरी जड़ों वाले सुदृढ़ बरगद का कुछ नहीं बिगाड़ सकती।

मंगल हो! कल्याण हो!

जागे धर्म गृही जीवन में, मंगल हो! कल्याण हो!
छोटे पाएं प्यार सदा ही, सदा बड़ों का मान हो॥

हों नर-नारी धर्मविहारी, धर्मवंत संतान हो।
सुख छाए समृद्धि छाए, पूरे सब अरमान हों॥

बरसे बरखा सदा समय पर, भरे खेत खलिहान हों।
फल फूलों से लदे हुए सब, बाग और उद्यान हों॥

सुखद शांति हो जीवन पथ पर, होटों पर मुस्कान हो।
मिले सफलता कदम कदम पर, सदा धर्म का ध्यान हो॥

सदाचार का जीवन जीए, मन पर लगी लगाम हो।
करे सत्य का दर्शन भीतर, सम्यक अंतर्ज्ञान हो॥

सच्चाई से धन अर्जित हो, मुक्त-हस्त से दान हो।
अपना भी हित सुख सध जाए, सुखी सभी इन्सान हों॥

धन आए पर सिर ना सूजे, दूर सदा अभिमान हो।
भरे नम्रता अंतर्मन में, जरा न गर्व गुमान हो॥

परपीड़ा का भाव न जागे, सेवा प्रमुख प्रधान हो।
मन मैत्री से भरा रहे, चित करुणा-कृपा-निधान हो॥

हो उत्थान कुशल कर्मों का, अकुशल का अवसान हो।
हो महान जीवन, मानो मानवता का वरदान हो॥

मनचाही या अनचाही हो, समता दृढ़ बलवान हो।
चित किंचित विचलित न होवे, मुश्किल सब आसान हो॥

अडिग रहे चट्टान सदृश, चाहे जैसा तूफान हो।
ऐसा हो इन्सान कि जैसे, स्वयं सिद्ध भगवान हो॥

विपश्यनाः संक्षिप्त परिचय

श्री गोयन्काजी ने म्यंमा के महान विपश्यनाचार्य सयाजी ऊ बा खिन से सर्वप्रथम सन १९५५ में 'विपश्यना' साधना सीखी। तब से अभ्यास का क्रम जारी रहा। सन १९६९ में भारत आये। व्यापार-धंधे से सर्वथा अवकाश ग्रहण कर भारत के विभिन्न स्थानों पर इस साधना-विधि के दस-दिवसीय शिविर लगाते रहे। सन १९७६ में प्रमुख विपश्यना केंद्र 'धम्मगिरि' की स्थापना के पश्चात अब तक पूरे विश्व में लगभग ११९ विपश्यना केंद्र स्थापित हो चुके हैं। अन्य नये-नये स्थानों पर भी केंद्र खुलते जा रहे हैं। इनमें साधकों के लिए निःशुल्क आवास तथा भोजनादि की स्थायी व्यवस्था रहती है। विपश्यना सिखाने का सारा व्यय कृतज्ञ साधकों के दान पर निर्भर रहता है। शिविरों का संचालन पूज्य गोयन्काजी तथा उनके द्वारा नियुक्त विश्व-भर के ९०० से अधिक सहायक आचार्यों द्वारा किया जाता है। शिविर-काल में साधकों को बाह्य संपर्क से दूर, शिविर-स्थल पर ही रहना अनिवार्य होता है।

भगवान गौतम बुद्ध द्वारा पुनरन्वेषित 'विपश्यना' विद्या सर्वथा संप्रदायविहीन एक प्रयोग-प्रधान विधा है। इसका अभ्यास करते समय अपने भीतर की सच्चाई का दर्शन करते हुए अपने मन को निर्मल बनाने तथा अपने आप को ऋत, यानी प्रकृति के नियमों के अनुरूप ढालने का काम किया जाता है। इसी को 'धर्म' कहते हैं। कालांतर में लोग इस शब्द का सही अर्थ भूल गये और 'संप्रदाय' को ही धर्म मानने लगे। आज जबकि धर्म के नाम पर चारों ओर इतनी अराजकता फैली हुई है, यह सांप्रदायिकताविहीन विद्या घोर अंधकार में प्रकाश-स्तंभ का काम देती है।

ध्यान की यह विद्या सीखने के लिए हर संप्रदाय के लोग आते हैं - नर हों या नारी। बाल, वृद्ध, युवा सभी उम्र के लोग आते हैं। बहुत ऊंची

शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति आते हैं और एकदम निरक्षर, अनपढ़ लोग भी। धनाढ्य भी आते हैं और दरिद्रनारायण भी। सरकारी वा गैर-सरकारी अधिकारी एवं कर्मचारी तथा हर क्षेत्र के व्यवसायी एवं उद्योगपति आते हैं। यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि हर तबके के लोग आते हैं। किसी भी विपश्यना शिविर में समाज के हर वर्ग का यह अनूठा संगम बहुत विस्मयजनक होता है। इतनी विविधताओं के होते हुए भी सभी लोग इस विद्या से लाभान्वित होते हैं।

विपश्यना के सर्वहितकारी स्वरूप को देख कर जेलों तथा पुलिसकर्मियों के लिए भी शिविरों का आयोजन किया जाता है।

विपश्यना विशोधन विन्यास

विपश्यना साहित्य

हिंदी

• निर्मल धारा धर्म की - (पांच दिवसीय प्रवचन)	रु. ५५/-
• प्रवचन सारांश (शिविर-प्रवचन)	रु. ४५/-
• जागे पावन प्रेरणा	रु. ८०/-
• जागे अंतर्बोध	रु. ५०/-
• धर्मः आदर्श जीवन का आधार	रु. ४०/-
• तिपिटक में सम्यक संबुद्ध, भाग-२	रु. १३०/
• धारण करे तो धर्म	रु. ७०/-
• क्या बुद्ध दुक्खवादी थे?	रु. ३५/-
• मंगल जगे गृही जीवन में	रु. ४०/-
• धम्मवाणी संग्रह (पालि गाथाएं एवं हिंदी अनु.)	रु. ४०/-
• विपश्यना पगोडा स्मारिका	रु. १००/-
• सुत्तसार भाग १ (दीघ एवं मज्झिम निकाय)	रु. ९५/-
• सुत्तसार भाग २ (संयुत्तनिकाय)	रु. ५०/-
• सुत्तसार भाग ३ (अंगुत्तर एवं खुद्दकनिकाय)	रु. ४५/-
• धन्य बाबा!	रु. ३५/-
• कल्याणमित्र सत्यनारायण गोयन्का (व्यक्तित्व और कृतित्व)	रु. ५०/-
• पातंजल योगसूत्र	रु. ५०/-
• आहुनेय्य, पाहुनेय्य, अंजलिकरणीय - डॉ. ओम प्रकाश जी	रु. ३०/-
• राजधर्म [कुछ ऐतिहासिक प्रसंग]	रु. ३५/-
• आत्म-कथन भाग-१	रु. ३५/-
• लोक गुरु बुद्ध	रु. १०/-
• देश की बाह्य सुरक्षा	रु. ०५/-
• गणराज्य की सुरक्षा कैसे हो!	रु. ०६/-
• शाक्यों और कोलियों के गणतंत्र का विनाश क्यों हुआ?	रु. १०/-
• अंगुत्तर निकाय, भाग-१	रु. १००/-
• केंद्रीय कारागृह जयपुर, विपश्यना का प्रथम जेल शिविर	रु. ३०/-
• विपश्यना : लोकमत भाग-१	रु. ५५/-
• विपश्यना : लोकमत भाग-२	रु. ४५/-
• अग्रपाल राजवैद्य जीवक	रु. २०/-
• मंगल हुआ प्रभात (हिंदी दोहे)	रु. ५५/-
• पथ-प्रदर्शिका	रु. २/-
• विपश्यना क्यों?	रु. १/-
• सम्राट अशोक के अभिलेख	रु. ५०/-
• आचार्य श्री सत्यनारायणजी गोयन्का का संक्षिप्त जीवन-परिचय	रु. २०/-
• अहिंसा किसे कहें?	रु. १५/-
• लकुण्डक भद्दिय	रु. १०/-
• गौतम बुद्धः जीवन-परिचय और शिक्षा	रु. २५/-
• भगवान बुद्ध की साम्प्रदायिकता-विहीन शिक्षा	रु. १०/-
• बुद्ध-जीवन-चित्रावली	रु. ३३०/-
• भगवान बुद्ध के अग्रश्रावक महामोग्गल्लान	रु. ३५/-
• क्या बुद्ध नास्तिक थे?	रु. ८५/-
• तिपिटक में सम्यक संबुद्ध, (६ भागों में) भाग-१ रु. ४५/-, भाग-२ रु. ५०/-, भाग-३ रु. ५५/-, भाग-४ रु. ४५/-, भाग-५ रु. ४५/-, भाग-६ रु. ५५/-	
• महामानव बुद्ध की महान विद्या विपश्यना का उद्गम और विकास (११६ चित्रों का संग्रह) सजिल्द	रु. ६२५/-
• भगवान बुद्ध के महाश्रावक महाकस्सप (धुतांगधारियों में 'अग्र')	रु. ४०/-
• महामानव बुद्ध की महान विद्या विपश्यना का उद्गम और विकास	रु. १४५/-
• भगवान बुद्ध के अग्रउपासक अनाथपिण्डिक	रु. ५०/-
• भगवान बुद्ध की अग्रश्राविका किसागोतमी	रु. ३०/-
• चित्त गृहपति एवं हत्थक आळवक	रु. ३०/-
• खुशियों की राह	रु. १५०/-
• विसाखा मिगारमाता	रु. ३५/-
• मगधराज सेनिय बिम्बिसार	रु. ४५/-
• बुद्धसहस्सनामावली (पालि एवं हिंदी)	रु. ३५/-
• आनन्द – भगवान बुद्ध के उपस्थाक	रु. १२०/-
• जीने की कला	रु. ७०/-
• परम तपस्वी श्री रामसिंह जी	रु. ५५/-
• भगवान बुद्ध की अग्रउपासिकाएं खुज्जुत्तरा एवं सामावती तथा उत्तरानन्दमाता	रु. २५/-
• विपश्यना पत्रिका संग्रह भाग - १	रु. ८०/-
• विपश्यना पत्रिका संग्रह भाग - २	रु. ७५/-
• आदर्श दंपति नकुलपिता एवं नकुलमाता	रु. २५/-

- तिक-पट्ठान (संक्षिप्त रूपरेखा) रु. ३५/-
- १२ हिंदी पुस्तिकाओं का सेट रु. १४/-
- धम्म-वंदना (पालि गाथाएं, हिंदी अनुवाद) रु. ४५/-
- धम्मपद (संशोधित हिंदी अनुवाद सहित) रु. ४५/-
- महासतिपट्ठानसुत्त (समीक्षा एवं भाषानुवाद) रु. ५५/-
- महासतिपट्ठानसुत्त (भाषानुवाद) रु. ३५/-
- बुद्धगुणगाथावली (पालि) रु. ३०/-
- बुद्धसहस्सनामावली (पालि) रु. १५/-
- प्रारंभिक पालि रु. ८५/-
- प्रारंभिक पालि की कुंजी रु. ५०/-
- जागो लोगां जगत रा (राजस्थानी दूहा) रु. ४५/-
- परिभाषा धरम री (राजस्थानी) रु. १०/-
- ५ राजस्थानी पुस्तिकाओं का सेट रु. ५/-
- विश्व विपश्यना स्तूप का संदेश (हिंदी, मराठी, अंग्रेजी) रु. १०/-

मराठी

- जगण्याची कला रु. ७०/-
- जागे पावन प्रेरणा रु. ८०/-
- प्रवचन सारांश रु. ४०/-
- धर्मः आदर्श जीवनाचा आधार रु. ४०/-
- जागे अंतर्बोध रु. ६५/-
- निर्मळ धारा धर्माची रु. ४५/-
- महासतिपट्ठानसुत्त (भाषानुवाद) रु. ३०/-
- महासतिपट्ठानसुत्त (समीक्षा) रु. ४०/-
- मंगलमय गृहस्थ-जीवन रु. ३५/-
- भगवान बुद्धाची सांप्रदायिकता-विहीन शिकवणुक रु. १०/-
- बुद्धजीवन-चित्रावली रु. ३३०/-
- आनंदाच्या वाटेवर रु. १५०/-
- आत्म-कथन भाग-१ रु. ५०/-
- अग्रपाल राजवैद्य जीवक रु. २०/-
- महामानव बुद्धाची महान विद्या विपश्यनाः उगम आणि विकास रु. १२५/-
- लोक गुरु बुद्ध रु. ०६/-
- लकुण्डक भद्दिय रु. १२/-
- प्रमुख विपश्यनाचार्य श्री सत्यनारायणजी गोयंका यांचा संक्षिप्त जीवन-परिचय रु. १८/-

गुजराती

- प्रवचन सारांश रु. ४५/-
- धर्मः आदर्श जीवननो आधार रु. ४५/-
- महासतिपट्ठानसुत्त रु. २०/-
- जागे अंतर्बोध रु. ७५/-
- धारण करे तो धर्म रु. ७०/-
- जागे पावन प्रेरणा रु. १००/-
- क्या बुद्ध दुःखवादी थे? रु. ३०/-
- विपश्यना शा माटे? (पुस्तिका) रु. ०२/-
- मंगल जगे गृही जीवन में रु. ३५/-
- निर्मल धारा धर्म की रु. ६५/-
- बुद्धजीवन-चित्रावली रु. ३३०/-
- लोक गुरु बुद्ध रु. ०६/-
- भगवान बुद्ध की साम्प्रदायिकता-विहीन शिक्षा रु. १०/-

अन्य भाषाओं में

- द आर्ट ऑफ लिविंग (तमिळ) रु. ६०/-
- डिस्कोर्स समरीज (तमिळ) रु. ३०/-
- ग्रेसियस फ्लो ऑफ धम्म (तमिळ) रु. २५/-
- मंगल जगे गृही जीवन में (तेलगु) रु. ३०/-
- प्रवचन सारांश (बंगाली) रु. ३५/-
- धर्मः आदर्श जीवन का आधार (बंगाली) रु. ३०/-
- महासतिपट्ठानसुत्त (बंगाली) रु. ९०/-
- प्रवचन सारांश (मलयालम) रु. ४५/-
- निर्मल धारा धर्म की (मलयालम) रु. ४५/-
- जीने का हुनर (उर्दू) रु. ७५/-
- धर्मः आदर्श जीवन का आधार (पंजाबी) रु. ५०/-

पालि तिपिटक सेटः

अङ्गुत्तरनिकाय (अजिल्द) (१२ ग्रंथ) रु. १५००/-

खुद्दकनिकाय – सेट १ (९ ग्रंथ) रु. ५४००/-

दीघनिकाय अभिनवटीका (रोमन) (भाग १ और २) रु. १०००/-

English Publications

- Sayagyi U Ba Khin Journal — Rs. 225/-
- Essence of Tipitaka by U Ko Lay — Rs. 130/-
- The Art of Living by Bill Hart — Rs. 85/-
- The Discourse Summaries — Rs. 60/-
- Healing the Healer by Dr. Paul Fleischman — Rs. 35/-
- Come People of the World — Rs. 40/-
- Gotama the Buddha: His Life and His Teaching — Rs. 45/-
- The Gracious Flow of Dharma — Rs. 40/-
- Discourses on Satipaṭṭhāna Sutta — Rs. 80/-
- The Wheel of Dhamma Rotates — Rs. 850/-
- Vipassana : Its Relevance to the Present World — Rs. 110/-
- Dharma: Its True Nature — Rs. 70/-
- Vipassana : Addictions & Health (Seminar 1989) — Rs. 70/-
- The Importance of Vedanā and Sampajañña — Rs. 135/-
- Pagoda Seminar, Oct. 1997 — Rs. 80/
- Pagoda Souvenir, Oct. 1997 — Rs. 50/-
- A Re-appraisal of Patanjali's Yoga- Sutra by S. N. Tandon — Rs. 85/-
- The Manuals Of Dhamma by Ven. Ledi Sayadaw — Rs. 205/-
- Was the Buddha a Pessimist? — Rs. 65/-
- Psychological Effects of Vipassana on Tihar Jail Inmates — Rs. 80/-
- Effect of Vipassana Meditation on Quality of Life (Tihar Jail) — Rs. 60/-
- For the Benefit of Many — Rs. 160/-
- Manual of Vipassana Meditation — Rs. 80/-
- Realising Change — Rs. 140/-
- The Clock of Vipassana Has Struck — Rs. 130/-
- Meditation Now : Inner Peace through Inner Wisdom — Rs. 85/-
- S. N. Goenka at the United Nations — Rs. 20/-
- Defence Against External Invasion — Rs. 10/-
- How to Defend the Republic? — Rs. 6/-
- Why Was the Sakyan Republic Destroyed? — Rs. 12/-
- Mahāsatipaṭṭhāna Sutta — Rs. 65/-
- Pali Primer — Rs. 95/-
- Key to Pali Primer — Rs. 55/-
- Guidelines for the Practice of Vipassana — Rs. 2/-
- Vipassana In Government — Rs. 1/-
- The Caravan of Dhamma — Rs. 90/-
- Peace Within Oneself — Rs. 10/-
- The Global Pagoda Souvenir 29 Oct.2006 (English & Hindi) — Rs. 60/-
- The Gem Set In Gold — Rs. 75/-
- The Buddha's Non-Sectarian Teaching — Rs. 15/-
- Acharya S. N. Goenka An Introduction — Rs. 25/-
- Value Inculcation through Self-Observation — Rs. 35/-
- Glimpses of the Buddha's Life — Rs. 330/-
- Pilgrimage to the Sacred Land of Dhamma (Hard Bound) — Rs. 750/-
- An Ancient Path — Rs. 100/-
- Vipassana Meditation and the Scientific World View — Rs. 15/-
- Path of Joy — Rs. 200/-
- The Great Buddha's Noble Teachings The Origin & Spread of Vipassana (Small) — Rs. 160/-
- Vipassana Meditation and Its Relevance to the World (Coffee Table Book) — Rs. 800/-
- The Great Buddha's Noble Teachings The Origin & Spread of Vipassana (HB) — Rs. 650/-
- Buddhaguṇagāthāvalī (in three scripts) — Rs. 30/-
- Buddhasahassanāmāvalī (in seven scripts) — Rs. 15/-
- English Pamphlets, Set of 9 — Rs. 11/-
- Set of 10 Post Card — Rs. 35/-
- Gotama the Buddha: His Life and His Teaching (French) — Rs. 50/-
- Meditation Now: Inner Peace through Inner Wisdom (French) — Rs. 80/-
- For the Benefit of Many (French) — Rs. 195/-
- For the Benefit of Many (Spanish) — Rs. 125/-
- The Art of Living (Spanish) — Rs. 130/-
- Path of Joy (German, Italian, Spanish, French) — Rs. 300/-

संपर्कः विपश्यना विशोधन विन्यास, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, जि. नाशिक, महाराष्ट्र. फोन: **०२५५३**-२४४०७६, २४४०८६, २४३७१२, २४३२३८. फैक्स: **०२५५३**-२४४१७६. (दक्षिण भारतीय भाषाओं में अनुवादित विपश्यना साहित्य, स्थानीय केंद्रों पर उपलब्ध है) Email: vri_admin@dhamma.net.in; **विपश्यना विशोधन विन्यास के प्रकाशन अब ऑनलाइन भी खरीदे जा सकते हैं। कृपया देखें www.vridhamma.org**

विपश्यना साधना केंद्र

विश्वभर में विपश्यना के निम्नलिखित केंद्र हैं। इन केंद्रों पर प्रायः हर माह दस दिवसीय आवासीय शिविर आयोजित होते हैं। इच्छुक व्यक्ति किसी भी केंद्र से भावी शिविर-कार्यक्रमों की जानकारी प्राप्त करके, अपनी सुविधानुसार सम्मिलित हो सकते हैं:–

प्रमुख केंद्र = धम्मगिरि, धम्मतपोवन : विपश्यना विश्व विद्यापीठ, इगतपुरी-४२२४०३, नाशिक. फोनः [९१] (**०२५५३**) २४४०७६, २४४०८६, २४३७१२, २४३२३८; फैक्सः ०२५५३-२४४१७६. Website: www.vri.dhamma.org, Email: <info@giri.dhamma.org> (केवल कार्यालय के समय अर्थात सुबह १० बजे से सायं ५ बजे तक).

धम्मनासिकाः संपर्कः १) **नाशिक विपश्यना केंद्र,** म.न.पा. जलशुद्धिकरण केंद्र के सामने, शिवाजीनगर, सातपुर, (पोस्ट-YCMOU), नाशिक-४२२२२२. संपर्कः फोनः (०२५३) ६५१६-२४२, ३२०३-६७७, मोबाइलः ९८२२५-१३२४४, Email: info@nasika.dhamma.org

धम्मसरिताः विपश्यना केंद्र, जीवन संध्या मंगल संस्थान, मातोश्री वृद्धाश्रम, सौरगांव, पोस्ट पडघा, ता. भिवंडी, जि. ठाणे-४२११०१ (खडावली मध्य रेल्वे स्टेशन के पास). फोनः (०२५२२) ६९५३०१, **संपर्कः** +९१ ७७९८३-२४६५९, ७७९८३-२५०८६.

धम्ममनमोदः मनमाड विपश्यना केंद्र, अनकाई किला स्टेशन के पास, पो. अनकाई, ता. येवला, जि. नाशिक-४२२ ४०३ **संपर्कः** (०२५९१) २२५१४१-२३१४१४.

धम्मवाहिनीः मुबई परिसर विपश्यना केंद्र, गांव रूंदे, टिटवाला (पूर्व) कल्याण, जि. ठाणे. **संपर्कः संपर्कः** मोबाईलः ९७७३०-६९९७८. केवल कार्यालय के दिन-- १२ से सायं ६ तक.

धम्मसाकेतः विपश्यना केंद्र, नालंदा स्कूल के पास, कानसई रोड, सुभाष टेकड़ी, उल्हासनगर-४२१००४, जि. ठाणे, महाराष्ट्र

धम्मविपुलः विपश्यना साधना केंद्र, सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट, प्लॉट नं. ९१ए; सेक्टर २६, पारासिक हिल, सीबीडी बेलापुर, नवी मुंबई ४०० ६१४. फोनः (०२२) २७५२-२२७७. Email: dhammavipula@gmail.com

धम्मपत्तनः एस्सेल वर्ल्ड के पास, गोराई खाड़ी, बोरीवली (पश्चिम) मुंबई – ४०० ०९१ व्यवस्थापक, फोनः (९१) (०२२) २८४५-२२३८, ३३७४-७५०१, मोबा. ९७७३०-६९९७५, (सुबह ११ से सायं ५ बजे तक); टेलि-फैक्सः (०२२) ३३७४-७५३१, Email: info@pattana.dhamma.org; Website: www.pattana.dhamma.org

धम्मसरोवरः खान्देश विपश्यना केंद्र, गेट नं. १६६, डेडरगांव जलशुद्धिकरण केंद्र के पास, मु.पो. तिखी-४२४ ००२, जिला- धुळे, (०२५६२) २०३४८२, ६९९५७३. मोबा. ९२२५४-६१०२१. **संपर्कः** फोनः २२२८६१, मोबा. ९९२२६-०७७१८, ९४०३४-२४३३३, ९४२२७-७७९०२. Email: info@sarovara.dhamma.org

धम्मानन्दः पुणे विपश्यना केंद्र, मरकल गांव के पास, आलंदी से ८ कि.मी. मोबा. कार्यालय ९२७१३-३५६६८. व्यवस्थापक मोबा. ९४२०४-८२८०५. **संपर्कः** पुणे विपश्यना समिति, नेहरू स्टेडियम के सामने, आनंद मंगल कार्यालय के पास, दादावाडी, पुणे-४११००२. फोनः (**०२०**) २४४६८९०३, २४४३६२५०; टेलि/फैक्सः २४४६४२४३. Email: info@ananda.dhamma.org Website:www.pune.dhamma.org;

धम्मपुण्णः संपर्कः पुणे विपश्यना समिति, दादावाडी, नेहरू स्टेडियम के सामने, आनंद मंगल कार्यालय के पास, पुणे-४११००२. फोनः (०२०) २४४३६२५०. २४४६८९०३. फैक्सः २४४६४२४३; Email: info@punna.dhamma.org

धम्मालयः दक्खिन विपश्यना अनुसंधान केंद्र, रामलिंग रोड, आलते पार्क, आलते, ता. हातकणंगले, जि. कोल्हापुर, पिनः ४१६१२३. फोनः **०२३०**-२४८७१६७, २४८७३८३, Email: info@alaya.dhamma.org. संपर्कः कार्यालयः २१०१/१९ इ, जयहिंद अपार्टमेंट, लक्ष्मीनगर, कोल्हापुर-४१६००५, फोनः(२३१) २५३०९९९, मोबा. ९७६७४-१३२३२.

धम्मअनाकुलः विपश्यना साधना केंद्र, खापरखेड़ फाटा, तेल्हारा-४४४१०८ जि. अकोला. **संपर्कः** १) विपश्यना चैरिटेबल ट्रस्ट, शेगांव, अपना बाजार, मेन रोड, शेगांव, जि. बुलडाना. फोनः ९५७९८-६७८९०, ९८८१२-०४१२५. २) श्री महेंद्र सिंह आनंद, मोबाइलः ९४२२१-८१९७०. Email: info@anakula.dhamma.org

धम्मअजयः विपश्यना साधना केंद्र, ग्राम - अजयपूर, पो. चिचपल्ली, मुल रोड, चंद्रपुर, Email: dhammaajaya@gmail.com **संपर्कः** १) श्री घरडे, सुगत नगर, नगीनाबाग वार्ड नं. २ जि. चंद्रपुर पिन-४४२४०१. मोबाइलः ८००७१५१०५०, ९४२१७-२१००६, २) श्री प्रीतिकमल पाटील, मोबाइलः ९४२१७-२१००६, ९८२२५-७०४३५, ९३७०३१२६७३,

धम्ममल्लः संपर्कः श्री. शेलके, सिद्धार्थ सोसायटी, यवतमाळ, ४४५००१, फोनः ९४२२८-६५६६१.

धम्मभूसनः विपश्यना साधना समिति, शांतिनगर, ओमकार कॉलोनी, कोटेचा हायस्कूल के पास, जि. जलगांव, भुसावल ४२५२०१, Email: info@bhusana.dhamma.org, **संपर्कः** मोबा. ९८२२९-१४०५६.

धम्मअजन्ताः अजंता अंतर्राष्ट्रीय विपश्यना समिति, एम. जी. एम. मेडिकल कालेज कैम्पस, एन-६, सिडको, औरंगाबाद-४३१००३. फोनः (०२४०) २३५००९२, २४८०१९४. Email: vipassana@emgm.org **संपर्कः** १) श्री रायबोले, फोनः (०२४०) २३४१८३६. २) श्री के. एन. पटेल, फोनः (निवास) (०२४०) २३५४२२३, (कार्या.) २३३३१३६. मोबाईलः ९४२२२-११३४४.

धम्मनागः नागपुर विपश्यना केंद्र– माहुरझरी गांव, नागपुर-कलमेश्वर रोड के पास, नागपुर; **संपर्कः** फोनः **०७१२**-२४५८६८६, २४२०२६१, मोबा. ९४२३४-०५६००; फैक्सः २५३९७१६. Email: info@naga.dhamma.org

धम्मसुगतिः संपर्कः १) श्री नारनवरे, एकायनो मग्गो धम्म प्रशिक्षण संस्था, सुगतनगर, नागपुर-१४. फोनः (०७१२) २६३०११५, फैक्सः २६५०८६७. मोबा. ९४२२१-२९२२९. २) सुरेंद्र राऊतः २६३२९१८. मोबा. ९२२६९-९६०८७.

धम्मवसुधाः विपश्यना केंद्र, हिवरा पोस्ट झडशी, ता. सेलु, जि. वर्धा **संपर्कः** १) श्री एवं सौ बांते, मोबा. ९३२६७३२५५०, ९३२६७३२५४७. २) श्री काटवे, मोबा. ९७३००६९७२६, Email: dhammavasudha@yahoo.com.in

धम्म छत्तपतिः फलटन, सातारा, महाराष्ट्र

धम्म आवासः लातुर विपश्यना समीती, आर. टी. ओ आफीस के पास, वसंत विहार कालोनी, बाभळगाव रोड, लातूर-४१३५३१ **संपर्कः** १) श्री द्वारकादास भुतडा, मोबा. ९६७३२५९९००, ०२३८२-२५९२८४, २) श्री आकाश कामदार, मोबा. ९९७०२-७७७०१.

धम्म निरंजनः विपश्यना साधना केंद्र, नेरली कुशता धाम नेरली. (नांदेड से ५ कि. मी. की दुरी पर) **संपर्कः** १) श्री एस. एम. जोंधले, मोबाइलः ९४२२१८९३१८. २) डॉ. कुलकर्णी, फोनः (०२४६२) २५२६५९. मोबाइलः ९४२२१७३२०२.

धम्मथलीः विपश्यना केंद्र, पो.बॉ. २०८, जयपुर-३०२००१, राजस्थान, फोनः **[९१] ०१४१**-२६८०२२०, मोबा. ०-९६१०४-०१४०१, ०९६०२८-४८८९६. फैक्सः २५७६२८३. Email: info@thali.dhamma.org

धम्ममरुधराः विपश्यना साधना केंद्र, लहरिया रिसोर्ट के पीछे, पाल-चौपासनी लींक रोड, चोखा, जोधपुर-३४२००९. मोबा. +९१-९३१४७२७२१५, +९१-९८२८१३११२०, फैक्सः +९१-२९१-२७४६४३५. Email: info@marudhara.dhamma.org **संपर्कः** श्री नेमीचंद भंडारी, ४१, अशोक नगर, पाल लींक रोड, जोधपुर-३४२००३. मोबा.: +९१-९८२९०२७६२१,

धम्मपुब्बजः चूरू (राजस्थान) **पुब्बज भुमी विपश्यना ट्रस्ट,** बलेरी रोड, (चूरू से ६ कि.मी.) चूरू (राजस्थान): **संपर्कः** १) श्री श्रवण कुमार फुलवारी, सी-८६, सामुदायीक भवन के पास अग्रसेन नगर, चूरू, मोबा. ०९४१४६-७६०६१. Email: gk.churu@gmail.com २) श्री सुरेश खन्ना, ६५ इंदिरा कालोनी, वनी पार्क, जयपुर, मोबा. ९४१३१-५७-५६. Email: sureshkhanna56@yahoo.com

धम्मअजरामरः विपश्यना केंद्र, वीर तेजाजी नगर, दौराई, अजमेर-३०५००३; फोनः (०१४५) २४४३६०४. **संपर्कः** श्री कैलाश बैरवाल, मोबा. ९४१३२२८३४०, ९४६१५६१३४४, ९००११९६५५६. Email: kailashbairwal@yahoo.com

धम्मपुष्करः विपश्यना केन्द्र, ग्राम रेवत (केडेल), पुष्कर पर्वतसर रोड, पुष्कर, जि अजमेर. मोबा. +९१-९४१३३-०७५७०. फोनः +९१-१४५-२७८०५७०. **संपर्कः** १) श्री रवि तोषणीवाल, मोबा. ०९८२९०-७१७७८, Email: info@toshcon.com २) श्री अनिल धारीवाल, मोबा. ०९८२९०-२८२७५. फैक्सः ०१४५-२७८७१३१.

धम्मसोतः विपश्यना साधना संस्थान, राहका गांव, (निम्मोद पोलीस पोस्ट के पास) बल्लभगढ़-सोहना रोड, (सोहना से १२ कि.मी.), जिला- गुडगांव, सोहना, हरियाणा. मोबा. ९८१२६५५५९९, ९८१२६४१४००. (बल्लभगढ़ और सोहना से बस उपलब्ध है।) संपर्कः विपश्यना साधना संस्थान, रुम न. १०१५, १० वां तल, हेमकुंठ/मोदी टावर्स, ९८ नेहरू प्लेस, नई दिल्ली-११००१९. फोनः **(०११)** २६४८-५०७१, २६४८-५०७२, २६४५-२७७२. फैक्सः २६४७०६५८. Email: info@sota.dhamma.org

धम्मपट्ठान : विपश्यना साधना केंद्र, कम्मासपुर, जि. सोनीपत, हरियाणा, पिन-१३१००१. मोबा. ०९९९१८७४५२४, **संपर्कः** ऊपर धम्मसोत के संपर्क पर.

धम्मकारुणिकः विपश्यना साधना संस्थान, गव्हरमेंट स्कूल के पास, गाँव नेवल, डाक सैनिक स्कूल कुंजपुरा, करनाल-१३२००१; **संपर्कः** श्री वर्मा, ५, शक्ति कालोनी, एस.बी.आई. के पास, करनाल-१३२००१. टेली-फैक्सः ०१८४-२२५७५४३, २२५७५४४; मोबा. ९९९२०-००६०१. Email: info@karunika.dhamma.org;

धम्म हितकारीः रोहतक, हरियाणा

धम्मसिखरः हिमाचल विपश्यना केंद्र, धर्मकोट, मैकलोडगंज, धर्मशाला, जिला- कांगरा, पिन-१७६२१९ (हि. प्र.) फोनः **०१८९२-** २२१३०९, २२१३६८. मोबा. (सायं ४ से ५) ०९८५७०-१४०५१. Email: info@sikhara.dhamma.org;

धम्मसलिलः देहरादून विपश्यना केंद्र, जनतनवाला गांव, देहरादून कॅन्ट तथा संतला देवी मंदिर के पास, देहरादून-२४८००१. फोनः **०१३५**-२१०४५५५, २७१५१८९. **संपर्कः** १) श्री भंडारी, १६ टैगोर विला, चक्राता रोड, देहरादून-२४८००१. फोनः (०१३५) २७१५१८९, फैक्सः २७१५५८०. २) श्री गुप्ता, फोनः २६५३३६६. Email: info@salila.dhamma.org;

धम्मसुवत्थीः जेतवन विपश्यना साधना केंद्रः कटरा बाईपास रोड, बुद्धा इंटर कालेज के सामने, श्रावस्ती, पिन-२७१८४५; फोनः **(०५२५२)** २६५४३९, ०९३३५८३३३७५ Email: info@suvatthi.dhamma.org **संपर्कः** श्री मुरली मनोहर, मातन हेलीया. मोबाईलः ०९४१५०-३६८९६, ०९४१५७-५१०५३.

धम्मलक्खणः लखनऊ विपश्यना केंद्र, अस्ती रोड, बक्शी का तालाब, लखनऊ-२२७२०२. फोनः (०५२२) २९६८५२५. मोबा. ०९७९४५४५३३४. Email: info@lakkhana.dhamma.org **संपर्कः** १) श्री जैन, ए-१०१, हेम्प्टन कोर्ट्स अपार्टमेंट्स, पिकैडिली होटल के पीछे, आलमबाग, लखनऊ-२२६ ००५, (उ.प्र.) फोनः नि. **(०५२२)**-२४२-४४०८, मोबा. ०९३३५९-०६३४१, ०९४१५०-३६८९६, ०९४१५७-५१०५३.

धम्मधजः पंजाब विपश्यना केंद्र, आनंदगढ़, पो. मेहलांवली-१४६११०, जिला- होशियारपुर. फोनः **०१८८२-**२७२३३३, मोबाइलः ९४६५१-४३४८८. Email: info@dhaja.dhamma.org

धम्म तिहारः नई दिल्ली जेल न. ४ तिहार, केन्द्रीय कारागृह, नई दिल्ली

धम्म रक्खकः नई दिल्ली नजफगढ़, पुलिस ट्रेनिंग कालेज

धम्मचक्कः विपश्यना साधना केंद्र, खरगीपुर गांव, पो. पियरी, चौबेपुर, (सारनाथ), वाराणसी. मोबाः ०९३०७०९३४८५, Email: info@cakka.dhamma.org **संपर्कः** १) श्री गुप्ता, फोनः ०५४२-३२४६०८९. मोबा. ९३३६९-१४८४३, (प्रातः १० से सायं ६.) २) श्री प्रेम श्रीवास्तव, मोबाईलः ९२३५४-४१९८३.

धम्मकल्याणः कानपुर (उ. प्र.) अंतर्राष्ट्रीय विपश्यना साधना केंद्र, ढोड़ी घाट, हनुमान मंदिर के पास, गाँव एमा, पो. रूमा, कानपुर नगर- २०९४०२, (सेन्ट्रल रेलवे स्टेशन से २३ कि० मी० एवं रमादेवी चौराहा से १५ कि० मी० दूरी पर स्थित) फोनः ०७३८८-५४३७९३, ०७३८८-५४३७९५, मोबा. ०८९९५४८०१४९. Email: dhamma.kalyana@gmail.com, **संपर्कः** १) श्री अशोक साहू, मोबा. ०९८३९१-३८०८४, २) डा. ओ. पी गुप्ता, मोबा. ०९४५०१-३२४३६.

धम्मसिन्धुः कच्छ विपश्यना केंद्र, ग्राम- बाड़ा, मांडवी, जिला- कच्छ-३७०४७५. फोनः (कार्या.) (०२८३४) २७३३०३,

फैक्स: २२४४८८, २८८९११; **संपर्क:** फोन: **(०२८३४)** २२३०७६, २२३४०६, Email: info@sindhu.dhamma.org

धम्मकोट : सौराष्ट्र विपश्यना केंद्र, कोठारिया रोड, लोथडा गांव, राजकोट, गुजरात. फोन: ०२८१ –२७८२०४०, मोबाईल: ९३२७९-२३५४० (राजकोट से १५ कि.मी.) **संपर्क:** फोन: ०२८१- २२२०८६१६, मोबाईल: ९४२७२-२१५९१, फैक्स: २२२१३८४. Email: info@kota.dhamma.org

धम्मदिवाकर: उत्तर गुजरात विपश्यना केंद्र, मीठ्ठा गाव, ता. और जिला- मेहसाणा, गुजरात; फोन: **(०२७६२)** २७२८००. Email: info@divakara.dhamma.org **संपर्क:** फोन: **(०२७६२)** २५४६३४, २५३३१५. मोबा. ०९४२९२३३०००,

धम्मसुरिन्द: सुरेंद्रनगर, गुजरात **संपर्क:**१) महासतीजी, फोन: (०२७५२) २४२०३०. २) डॉ. बविशी, फोन: २३२५६४.

धम्मभवन: संपर्क: १) 'धम्मभवन', ५ कालिंदी पार्क, अकोटा अतितिगृह के पीछे, अकोटा, बड़ोदा-३९००२०; फोन: (०२६५) २३४११८१. २) विठ्ठलभाई पटेल, फोन: (०२६९२) मोबा. ९८२५०-२८०५७. Email: vvsou@hotmail.com

धम्म अम्बिका : विपश्यना ध्यान केंद्र, (१५ कि० मी० नवसारी तथा बिलीमोरा रेलवे स्टेशन) १) जी एल/१२ निलांजन काम्प्लेक्स, राधा किशन मंदिर के सामने, नूतन सोसायटी के पास, महर्षि अरविंद मार्ग दुधिया तलाव, नवसारी, २) श्री रत्नशीभाई के. पटेल, मोबा. ०९८२५०४४५३६, ३) श्री मोहनभाई पटेल, मोबा. ०९५३७२६६९०९.

धम्मपीठ: गुर्जर विपश्यना केंद्र, ग्राम- रनोडा, ता. धोलका, जिला- अहमदाबाद- ३८७८१०, मोबा. ८९८००-०१११०, ८९८००-०१११२, ९४२६४-१९३९७. फोन: (०२७१४) २९४६९०. **संपर्क:** श्रीमती शशी तोडी, मोबा. ९८२४०-६५६६८. Email: info@pitha.dhamma.org

धम्मखेत्तः विपश्यना अन्तर्राष्ट्रीय साधना केंद्र, (१२.६ किमी.) माइल स्टोन नागार्जुन सागर रोड, कुसुम नगर, वनस्थलीपुरम हैदराबाद-५०००७०, (आंध्र प्रदेश) फोन: **(०४०)** २४२४०२९०, ३२४६०७६२, ०९४९१५९४२४७, फैक्स: २४२४१७४६. Email: info@khetta.dhamma.org

धम्मसेतु: विपश्यना साधना केंद्र, ५३३, पझान- थंडलम रोड, थीरुनीरमलाई रोड, द्वारा, थीरुमुदीवक्कम, चेन्नई-६०००४४. फोन: ०४४-२४७८०९५३, २४७८०९५२, मोबाइल: ९४४४०-२१६२२, **संपर्क:** फोन: ०४४-४३४०-७०००, ४३४०-७००१, फैक्स: ९१-४४-४२०१-११७७. मोबा. ०९८४०७-५५५५५. Email: setu.dhamma@gmail.com;

धम्मपफुल्ल: बैंगलोर विपश्यना केंद्र, अलूर-५६२१२३. (गाँव अलूर, अलूर पंचायत कार्यालय के पास) तुमकूर हाईवे के सामने दासनपुरा बैंगलोर उत्तर तालुका, (कर्नाटक). फोन: **(०८०)** २३७१-२३७७, २३७१७१०६, ९१-९७३९५९१५८० (सुबह १० से सायं ६ तक), ९२४२३-५७४२४ (सुबह ९ से दोपहर २ तथा सायं ४ से ६ तक), एवं ९३४३५-४५३८८ (सुबह ११ से दोपहर ३ तक) Email: info@paphulla.dhamma.org [बैंगलोर रेल्वे स्टेशन से २३ की.मी. दूर; मजेस्टिक बस स्टैंड के प्लेटफार्म २० से नं. २५६, २५८, २५८सी, २५८ के बस से तुमकूर हाईवे पर हिमालया ड्रग भवन तक, तथा वहां से अलूर गांव के लिए ऑटोरिक्शा मिलते हैं।]

धम्मनागाज्जुन : विपश्यना साधना केंद्र, हिल कॉलोनी, नागार्जुन सागर, जि. नालगोंडा, आंध्र प्रदेश, (हैदराबाद से १४०.४ किमी, बुद्धपार्क के पास, हिल कॉलोनी से हैदराबाद की तरफ ३ किमी, दूरी पर) पिन-५०८२०२. फोन: (८६८०) २७७९९९ मोबा: ०९९६३७७५६४५, ९४४०१- ३९३२९. Email: info@nagajjuna.dhamma.org

धम्मनिज्झान : विपश्यना साधना केंद्र, इंदूर, पो. पोचाराम-५०३१८६, येदपल्ली मंडल, जि. निजामाबाद, फोन: **(०८४६७)** ३१६६६३, ९९०८५९६३३६. Email: info@nijjhana.dhamma.org

धम्मविजय : विपश्यना साधना केंद्र, विजयराय, पोस्ट- पेदावेगी मंडलम्, पिन-५३४४७५, जि. पश्चिम गोदावरी, (आंध्र प्रदेश). [विजयराय गांव एलूरु से १५ किमी, एलूरु चिंतलपुडी रोड पर. विजयराय बस स्टॅन्ड से ३ की. मी. दूरी पर धम्मविजया सेंटर हैं, बस स्टॅन्ड से ॲटो/टॅक्सी उपलब्ध हैं।] फोन: **(०८८१२)** २२५५२२; मोबा. ९४४१४-४९०४४

धम्माराम: विपश्यना अंतर्राष्ट्रीय साधना केंद्र, कुमुदावल्ली गांव, भीमावरम-भानुकू रोड, (भीमावराम के पास), मंडल -पाल कोडेरु, जि. पश्चिम गोदावरी, पिन-५३४२१०. फोन: ०८८१६- २३६५६६. Email: info@rama.dhamma.org

धम्म कोण्डञ्ञ : विपश्यना साधना केंद्र, कोंडापुर (व्हाया) संगारेड्डी, जि. मेडक - ५०२३०६. **संपर्क:** मोबा. ९३९२०-९३७९९, ९३९८३-१६१५५.

धम्मकेतन: विपश्यना साधना केंद्र, पो. मम्परा (व्हाया) कोडुकुलान्जी, चेन्गन्नूर, जि. अलपुझ्झा. केरल-६८९५०८. फोन: (०४७९) २३५-१६१६. Email: info@ketana.dhamma.org **संपर्क:** १) (कार्यालय) **केरल विपश्यना समिती,** मायथ्री, नेरेचथरा लाइन, पॅरनडोर रोड, एलमकरा पो. ऑ. कोची-६८२ ०२६. केरल फोन: (०४८४) २५३९८९१ २) श्री बी. रविंद्रन, मोबा. ९८४६५-६९८९१.

धम्म मधुरा: मदुराई (धर्म की मधुरता) मदुराई

धम्मकानन : धम्मकानन विपश्यना केंद्र, वैनगंगा तट, रेंगाटोला, पो. गर्रा, बालाघाट. फोन: (०७६३२) २९२४६५; **संपर्क:** १) श्री हरीदास मेश्राम, १२६, रतन कुटी, गंगानगर रोड, बुढ़ी, बालाघाट-४८१००१, (म. प्र.) फोन: **(०७६३२)** २३९१६५, मोबाईल: ०९४२५१४००१५, Email: dineshbgt@hotmail.com २) श्री खोब्रागडे, मोबा. ०९४२४३-३६२४१.

धम्मकेतु : विपश्यना केंद्र, पोस्ट बॉक्स १६, थनौद, व्हाया-अंजौरा, जिला-दुर्ग, छत्तीसगढ़-४९१००१; (म.प्र.) फोन: (०७८८) ३२०५५१३, मोबा. ९५८९८४२७३७. Email: info@ketu.dhamma.org **संपर्क:** १) धम्मकेतु, (उपरोक्त केंद्र के पते पर) तथा मोबा. ०९४२५२-३४७५७, ०९०९८९-२०२४६.

धम्मबल : विपश्यना साधना केंद्र, भेडाघाट थाने से एक किलोमीटर, बापट मार्ग, भेडाघाट, जबलपुर. मोबा. ९३००५०६२५३. **संपर्क:** विपश्यना ट्रस्ट, जबलपुर, द्वारा - मधु मेडिकल स्टोर्स, मेडिसिन काम्प्लेक्स, शास्त्रीब्रिज के पास, मॉडेल रोड, बैंक ऑफ बड़ौदा के बाजू में, जबलपुर-०२ फोन: ०७६१-४००६२५२, मोबा. ९९८१५-९८३५२, ९४२४३-५५२१४.

धम्मलिच्छवी : वैशाली विपश्यना केंद्र, लदौरा ग्राम, लदौरा पाक्री, मुजफ्फरपुर-८४३११३. फोन: ०९९३११६१२९०.

संपर्कः श्री गोयन्का, जेनीथ आटो सर्विस, अघोरिया बाजार, पो. रामना, मुजफ्फरपुर, पिन-८४२००२. फोनः **०६२१**-२२४०-२१५, २२४७७६०. Email: info@licchavi.dhamma.org

धम्मबोधिः बोधगया अंतर्राष्ट्रीय विपश्यना साधना केंद्र, मगध विश्वविद्यालय के समीप, पो. मगध विश्वविद्यालय, गया-ढोबी रोड, बोधगया-८२४२३४, मोबा. ९४७१६-०३५३१, Email: info@bodhi.dhamma.org **संपर्कः** फोनः **(०६३१)** २२००४३७, ९९५५९-११५५६.

धम्मपुब्बोत्तरः मिजोरम विपश्यना साधना केंद, कमलानगर-२, सीएडीसी, चांगतै-सी, जि. लोंगतलाई, मिजोरम -७९६७७२. Email: mvmc.knagar@gmail.com, **संपर्क**: दिगंबर चकमा, फोनः ०३७२-२५६३६८३. मोबा. ०९४३६७-६३७०८,

धम्मपुरीः त्रिपुरा विपश्यना मेडिटेशन सेंटर, पो. मचमरा, जि. उत्तर त्रिपुरा, पिनः ७९९२६५. मोबा. ०९८६२६-४६७६४, Email: Info@Puri.dhamma.org **संपर्कः** श्री देवान मोहन, फोनः ०३८१-२३००४४१, मोबा. ०९८६२१-५४८८२, ०९४०२५-२७१९१.

धम्मगंगाः विपश्यना केंद्र, सोदपुर, हरिश्चन्द्र दत्ता रोड, पनिहटी, बारो मन्दिर घाट, कोलकाता-७००११४. फोनः **(०३३)** २५५३२८५५. Email: info@ganga.dhamma.org **संपर्कः** कार्यालयः श्री काजड़िया, २२, बोनफील्ड लेन, दूसरा तल्ला, कोलकाता-७००००१, फोनः **(०३३)** २२४२३२२५/४५६१ (२) श्री तोदी, १२३A, मोतीलाल नेहरू रोड, कोलकाता-२९ फोन नि. २४८५४१७९. मोबा. ९८३१४-४७७०१.

धम्मबंगः कोलकाता, पश्चिम बंगाल **संपर्कः** धम्मगंगा केंद्र.

धम्मपालः धम्मपाल विपश्यना केंद्र, केरवा डैम के पीछे, ग्राम दौलतपुरा, भोपाल-४६२ ०४४, Email: dhammapal@airtelmail.in; **संपर्कः** मोबा. ९८९३२-८९०४९, फोनः (०७५५) २४६८०५३, २४६२३५१, फैक्सः २४६-८१९७. ऑन लाइन आवेदन; http://www.dhamma.org/en/schedules/schpala.shtml

धम्ममालवा : इंदौर (म.प्र.) विपश्यना केंद्र, ग्राम - जंबूडी हप्सी, गोमटगिरी के आगे, पितृ पर्वत के सामने, हातोद रोड, इंदौर-४५२००३. **संपर्कः** १) इंदौर विपश्यना इंटरनेशनल फाउंडेशन, ट्रस्ट, "लाभगंगा" ५८२, एम. जी. रोड इंदौर (म.प्र.) फोनः (०७३१) ४२७३३१३. Email: info@malava.dhamma.org; dhammamalava@gmail.com २) श्री शंभुदयाल शर्मा, मोबा. ९८९३१-२९८८८.

धम्मरत : (रतलाम से १५ कि.मी.) साई मंदीर के पीछे, ग्राम धमनोद ता. साईलन जि. रतलाम-४५७००१, फैक्सः ०७४१२ ४०३८८२, मोबा. ०९८२७५-३५२५७. Email: dhamm.rata@gmail.com **संपर्कः** रतलाम विपश्यना समिति, द्वारा डा वाधवानी क्लीनीक, ११७, स्टेशन रोड, रतलाम-४५७००१ मोबा. ०९९८१०-८४८२२, ९४२५३-६४९५६.

धम्मउपवनः बाराचकिया, बिहार **संपर्कः** फोनः निवास (०६२१) २४४ ९७५; ५५२१ ०७७०

धम्मउत्कलः विपश्यना साधना केंद्र, ग्राम चानबेरा पो. अमसेना, (व्हाया) खरियार रोड जिलाः नुआपाडा, उड़ीसा-७६६१०६, मोबा. ०९४०६२३७८९६, संपर्कः १) श्री. एस. एन. अग्रवाल, मोबा. ०९४३८६१०००७, २) श्री. पुरुषोत्तम जे. मोबा. ०९४३७०-७०५०५,

धम्मसिक्किमः विपश्यना साधना केंद्र, पो. ऑ. आहो सेन्ती, ग्राम, सेन्ती ईस्ट सिक्किम- ७३७१३५, **संपर्कः** शीलादेवी चौरसिया, मोबा. ०९८३०७-०६४८१, ०९७४८४-६१७८७, ०९४३४३-३९३०३, ०९४३४८-६२२२६. Email: basantigorsia@hotmail.com

धर्मशृंगः नेपाल विपश्यना केंद्र, मुहान पोखरी, बूढ़ानीलकंठ, पो. बा. १२८९६, काठमांडू, फोनः **९७७ (०१)** ४३७१६५५, ४३७१००७, ४२५०५८१, ४२२५४९०; निवासः ४२२४७२०, ४२२६३१४. Email: info@sringa.dhamma.org; **संपर्कः** फोनः २५०५८१, २२५४९०, नि.२२१२९०. फैक्सः २२४७२०, २२६३१४.

धम्मजननीः लुंबिनी विपश्यना केंद्र, लुंबिनी (पीस फ्लेम के पास), रुपनदेही, लुंबिनी अंचल, नेपाल. Email: info@janani.dhamma.org फोनः ९७७ (७१) ५८०२८२. **संपर्कः** नेपाल. फोनः **९७७ (७१)** ५४१५४९.

धम्मविराट : पूर्वांचल विपश्यना केंद्र, फुलबरी टोल, बस पार्क के दक्षिण की ओर इथारी- ७ संसरी, नेपाल; फोनः **[९७७]** (२५) ५८५५२१; Email: info@birata.dhamma.org; **संपर्कः** १) श्री मुंदडा, फोनः **[९७७]** (२१) ५२५४८६, ५२७६७१. फैक्सः ५२६४६६; २) श्री गोयल, फोनः दूकान **[९७७]**(२५)५२३५२८, नि. ५२६८२९.

धम्मतराई : बीरगंज विपश्यना केंद्र, परवानीपुर, पारसा, नेपाल. Email: info@tarai.dhamma.org **संपर्कः** १) कार्यालयः संदीप बिल्डींग, आदर्श नगर, पो. बा. नं. ३२. फोनः ०५१-५२१८८४. फैक्सः ०५१-५८०४६५. मोबा. ९८०४२-४५७६

धम्मचितवन : चितवन विपश्यना केंद्र, मंगलपुर व्ही.डी.सी. वार्ड नं ८, विजयनगर बाजार के समीप, चितवन, नेपाल Email: info@citavana.dhamma.org **संपर्कः** १) श्री महाराजन, फोनः ९७७(५६) ५२०२९४, ५२८२९४

धम्मकीत्ति : कीर्तिपुर विपश्यना केंद्र, देवधोका, कीर्तिपुर, नेपाल. **संपर्कः** श्री महर्जन, समाल तोले, वार्ड नं. ६, कीर्तिपुर.

धम्मपोखरा : पोखर विपश्यना केंद्र, पचभैया लेखनाथ नगरपालिका, पोखरा, कसकी, नेपाल. **संपर्कः** श्री नारा गुरुंग फोनः [९७७] (०६१) ६९१९७२, मोबा. ९८४६२-३२३८३, ९८४१२-५५६८८. Email: info@pokhara.dhamma.org

Cambodia

Dhamma Laṭṭhikā, Battambang Vipassana Centre, Trungmorn Mountain, National Route 10, District Phnom Sampeau, Battambang, Cambodia **Contact:** Phnom-Penh office: Mrs. Nary POC, Street 350, #35, Beng Keng Kang III, Khan Chamkar Morn, Phnom-Penh, Cambodia. P.O. Box 1014 Phnom-Penh, Cambodia Tel. [855] (012) 689 732; poc_nary@hotmail.com; **Local Contact:** Off: Tel: [855] (536) 488 588, 2. Mr. Sochet Kuoch, Tel: [855] (092) 931 647, [855] (012) 995 269 Email: mientan2000@yahoo.co.uk and ms_apsara@yahoo.com

Hong Kong

Dhamma Muttā, G.P.O. Box 5185, Hong Kong Tel: 852-2671 7031; Fax: 852-8147 3312 Email: info@hk.dhamma.org

Indonesia

Dhamma Jāvā, Jl. H. Achmad No.99; Kampung Bojong, Gunung Geulis, Kecamatan Sukaraja, Cisarua-Bogor, Indonesia. Tel: [62] (0251) 827-1008; Fax: [62] (021) 581-6663; Website: www.java.dhamma.org **Course Registration Office Address:** IVMF (Indonesia Vipassana Meditation Foundation), Jl. Tanjung Duren Barat I, No. 27 A, Lt. 4, Jakarta Barat, Indonesia Tel : [62] (021) 7066 3290 (7am to 10pm); Fax: [62] (021) 4585 7618 Email: info@java.dhamma.org

Iran

Dhamma Īran, Teheran Dhamma House Tehran Mehrshahr, Eram Bolvar, 219 Road, No. 158 Tel: 98-261-34026 97; website: www.iran.dhamma.org Email: info@iran.dhamma.org

Israel

Dhamma Pamoda, Kibbutz Deganya-B, Jordan Valley, Israel **City Contact:** Israel Vipassana Trust, P.O. Box 75, Ramat-Gan 52100, Israel Website: www.il.dhamma.org/os/Vipassana-centre-eng.asp Email: info@il.dhamma.org

Dhamma Korea, Choongbook, Korea. Dabo Temple, 17-1, samsong-ri, cheongcheon-myun, gwaesan-koon, choongbook, Korea. Tel: +82-010-8912-3566, +82-010-3044-8396 Website: www.kr.dhamma.org Email: dhammakor@gmail.com

Japan,

Dhamma Bhānu, Japan Vipassana Meditation Centre, Iwakamiyoku, Hatta, Mizucho-cho, Funai-gun, Kyoto 622 0324 Tel/Fax: [81] (0771) 86 0765, Email: info@bhanu.dhamma.org

Dhammādicca, 782-1 Kaminogo, Mutsuzawa-machi, Chosei-gun, Chiba, Japan 299 4413. Tel: [81] (475) 403 611. Website: www.adicca.dhamma.org

Malaysia

Dhamma Malaya, Malaysia Vipassana Centre, Centre Address: Gambang Plantation, opp. Univ. M.P. Lebuhraya MEC, Gambang, Pahang, Malaysia **Office Address:** No., 30B, Jalan SM12, Taman Sri Manja, 46000 Petaling Jaya, Malaysia. Tel: [60] (16) 341 4776 (English Enquiry) Tel: [60] (12) 339 0089 (Mandarin Enquiry) Fax: [60] (3) 7785 1218; Website: www.malaya.dhamma.org Email: info@malaya.dhamma.org

Mongolia

Dhamma Mahāna, Vipassana center trust of Mongolia. Eronkhy said Amaryn Gudamj, Soyolyn Tov Orgoo, 9th floor, Suite 909, Mongolia Tel: [976] 9191 5892, 9909 9374; **Contact:** Central Post Office, P. O. Box 2146 Ulaanbaatar 211213, Mongolia Email: info@mahana.dhamma.org

Myanmar

Dhamma Joti, Vipassana Centre, Wingaba Yele Kyaung, Nga Htat Gyi Pagoda Road, Bahan, Yangon, Myanmar Tel: [95] (1) 549 290, 546660; Office: No. 77, Shwe Bon Tha Street, Yangon, Myanmar. Fax: [95] (1) 248 174 **Contact:** Mr. Banwari Goenka, Goenka Geha, 77 Shwe Bon Tha Street, Yangon, Myanmar Tel: [95] (1) 241 708, 253 601, 245 327, 245 201; Res. [95] (1) 556 920, 555 078, 554 459; Tel/Fax: Res. [95] (01) 556 920; Off. 248 174; Mobile: 95950-13929; Email: bandoola@mptmail.net.mm; goenka@ mptmail.net.mm Email: dhammajoti@mptmail.net.mm

Dhamma Ratana, Oak Pho Monastery, Myoma Quarter, Mogok, Myanmar **Contact:** Dr. Myo Aung, Shansu Quarter, Mogok. Mobile: [95] (09) 6970 840, 9031 861;

Dhamma Maṇḍapa, Bhamo Monastery, Bawdigone, Near Mandalay Arts &

Science University, 39th Street, Mahar Aung Mye Tsp., Mandalay, Myanmar Tel: [95] (02) 39694 Email: info@mandala.dhamma.org
Dhamma Maṇḍala, Yetagun Taung, Mandalay, Myanmar, Tel: [95] (02) 57655 **Contact:** Dr Mya Maung, House No 33, 25th Street, (Between 81 and 82nd Street), Mandalay, Myanmar Tel: [95] (02) 57655, Email: info@mandala.dhamma.org
Dhamma Makuṭa, Mindadar Quarter, Mogok.Mandalay Division, Myanmar. Tel: [95] (09) 80-31861. Email: info@joti.dhamma.org
Dhamma Manorama, Main road to Maubin University, Maubin, Myanmar. Tel: **Contact:** U Hla Myint Tin, Headmaster, State High School, Maubin, Myanmar. Tel: [95] (045) 30470
Dhamma Mahimā, Yechan Oo Village, Mandalay-Lashio Road, Pyin Oo Lwin, Mandalay Division, Myanmar. Tel: [95] (085) 21501. Email: info@mandala.dhamma.org
Dhamma Manohara, Aung Tha Ya Qr, Thanbyu-Za Yet, Mon State **Contact:** Daw Khin Kyu Kyu Khine, No.64 Aungsan Road, Set-Thit Qr, Thanbyu-Zayet, Mon State, Myanmar. Tel: [95] (057) 25607
Dhamma Nidhi, Plot No. N71-72, Off Yangon-Pyay Road, Pyinma Ngu Sakyet Kwin, In Dagaw Village, Bago District, Myanmar. **Contact:** Moe Mya Mya (Micky), 262-264, Pyay Road, Dagon Centre, Block A, 3rd Floor, Sanchaung Township, Yangon11111, Myanmar. Tel: 95-1-503873, 503516~9, Email: dagon@mptmail.net.mm
Dhamma Ñāṇadhaja, Shwe Taung Oo Hill, Yin Ma Bin Township, Monywa District, Sagaing Division, Myanmar **Contact:** Dhamma Joti Vipassana Centre
Dhamma Lābha, Lasho, Myanmar
Dhamma Magga, Near Yangon, Off Yangon Pegu Highway, Myanmar
Dhamma Mahāpabbata, Taunggyi, Shan State, Myanmar
Dhamma Cetiya Paṭṭhāra, Kaytho, Myanmar
Dhamma Myuradipa, Irrawadi Division, Myanmar
Dhamma Pabbata, Muse, Myanmar
Dhamma Hita Sukha Geha, Insein Central Jail, Yangon, Myanmar
Dhamma Hita Sukha Geha-2, Central Jail Tharawaddy, Myanmar
Dhamma Rakkhita, Thayawaddi Prison, Bago, Myanmar
Dhamma Vimutti, Mandalay, Myanmar

Philippines

Dhamma Phala, Philippines Email: info@ph.dhamma.org

Sri Lanka

Dhamma Kūṭa, Vipassana Meditation Centre, Mowbray, Hindagala, Peradeniya, Sri Lanka Tel/Fax: [94] (081) 238 5774; Tel: [94] (060) 280 0057; Website: www.lanka.com/dhamma/dhammakuta Email: dhamma@sltnet.lk
Dhamma Sobhā, Vipassana Meditation Centre Balika Vidyala Road, Pahala Kosgama, Kosgama, Sri Lanka Tel: [94] (36) 225-3955 Email: dhammasobhavmc@gmail.com
Dhamma Anurādha, Ichchankulama Wewa Road, Kalattewa, Kurundankulama, Anuradhapura, Sri Lanka. Tel: [94] (25) 222-6959; **Contact:** Mr. D.H. Henry, Opposite School, Wannithammannawa, Anuradhapura, Sri Lanka. Tel: [94] (25) 222-1887; Mobile. [94] (71) 418-2094. Website: www.anuradha.dhamma.org Email: info@anuradha.dhamma.org

Taiwan

Dhammodaya, No. 35, Lane 280, C hung-Ho Street, Section 2, Ta-Nan, Hsin She, Taichung 426, P. O Box No. 21, Taiwan Tel: [886] (4) 581 4265, 582 3932; Website: www.udaya.dhamma.org Email: dhammodaya@gmail.com
Dhamma Vikāsa, Taiwan Vipassana Centre - Dhamma Vikasa No. 1-1, Lane 100, Dingnong Road Laonong Village Liouguei Township Kaohsiung County

Taiwan Republic of China Tel: [886] 7-688 1878 Fax: [886] 7-688 1879 Email: info@vikasa.dhamma.org

Thailand,

Dhamma Kamala, Thailand Vipassana Centre, 200 Yoo Pha Suk Road, Ban Nuen Pha Suk, Tambon Dong Khi Lek, Muang District, Prachinburi Province, 25000, Thailand Tel. [66] (037) 403- 514-6, [66] (037) 403 185; Website: http://www.kamala.dhamma.org/ Email: info@kamala.dhamma.org

Dhamma Ābhā, 138 Ban Huay Plu, Tambon Kaengsobha, Wangton District, Pitsanulok Province, 65220, Thailand Tel : [66] (81) 605-5576, [66] (86) 928-6077; Fax : [66] (55) 268 049; Website: http://www.abha.dhamma.org/ Email: info@abha.dhamma.org

Dhamma Suvaṇṇa, 112 Moo 1, Tambon Kong, Nongrua District, Khonkaen Province, 40240, Thailand Tel [66] (08) 9186-4499, [66] (08) 6233-4256; Fax [66] (043) 242-288; Website: http://www.suvanna.dhamma.org/ Email: info@suvanna.dhamma.org

Dhamma Kañcana, Mooban Wang Kayai, Tambon Prangpley, Sangklaburi District, Kanchanaburi Province, Thailand Tel. [66] (08) 5046-3111 Fax [66](02) 993-2700 Email: info@kancana.dhamma.org

Dhamma Dhānī, 42/660 KC Garden Home Housing Estate, Nimit Mai Road, East Samwa Sub-district, Klongsamwa District, Bangkok 10510, Thailand Tel. [66] (02) 993-2711 Fax [66] (02) 993-2700 Email: info@dhani.dhamma.org

Dhamma Sīmanta, Chiengmai, Thailand **Contact:** Mr. Vitcha Klinpratoom, 67/86, Paholyotin 69, Anusaowaree, Bangkhen, BKK 10220 Thailand Tel: [66] (81) 645 7896; Fax: [66] (2) 279 2968; Email: vitchcha@yahoo.com Email: info@simanta.dhamma.org

Dhamma Porāṇo: A meditator has donated six acres of land near Nakorn Sri Dhammaraj (the name of the city), an important and ancient sea-port.

Dhamma Puneti, Udon Province, Thailand

Dhamma Canda Pabhā, Chantaburi, an eastern town about 245 kilometres from Bangkok

Australia & New Zealand,

Dhamma Bhūmi, Vipassana Centre, P. O. Box 103, Blackheath, NSW 2785, Australia Tel: [61] (02) 4787 7436; Fax: [61] (02) 4787 7221 Website: www.bhumi.dhamma.org Email: info@bhumi.dhamma.org

Dhamma Rasmi, Vipassana Centre Queensland, P. O. Box 119, Rules Road, Pomona, Qld 4568, Australia Tel: [61] (07) 5485 2452; Fax: [61] (07) 5485 2907 Website: www.rasmi.dhamma.org Email: info@rasmi.dhamma.org

Dhamma Pabhā, Vipassana Centre Tasmania, GPO Box 6, Hobart, Tasmania 7001, Australia Tel: [61] (03) 6263 6785; Website: www.pabha.dhamma.org Course registration & information: [61] (03) 6228-6535 or (03) 6266-4343 Email: info@pabha.dhamma.org

Dhamma Āloka, P. O. Box 11, Woori Yallock, VIC 3139, Australia Tel: [61] (03) 5961 5722; Fax: [61] (03) 5961 5765 Website: www.aloka.dhamma.org Email: info@aloka.dhamma.org

Dhamma Ujjala, Mail to: PO Box 10292, BC Gouger Street, Adelaide SA 5000, [Lot 52, Emu Flat Road, Clare SA 5453, Australia] **Tel Contact:** Anne Blizzard [61] (0)8 8278 8278; Email: info@ujjala.dhamma.org

Dhamma Padīpa, Vipassana Foundation of WA, Australia, Website: www.dhamma.org.au **Contact:** Andrew Parry C/- 13 Goldsmith Road, Claremont, WA 6010, Australia. Tel: [61]-(8)-9388 9151. Email: andparry@optusnet.com.au Email: info@padipa.dhamma.org

Dhamma Medinī, 153 Burnside Road, RD3 Kaukapakapa, Rodney District, New Zealand Tel: [64] (09) 420 5319; Fax: [64] (09) 420 5320; Website: www.medini.dhamma.org Email: info@medini.dhamma.org

Dhamma Passaddhi, Northern Rivers region, New South Wales Email: info@passaddhi.dhamma.org

Europe,

Dhamma Dīpa, Harewood End, Herefordshire, HR2 8JS, UK Tel: [44] (01989) 730 234; male AT bungalow: [44] (01989) 730 204; female AT bungalow: [44] (01989) 731 024; Fax: [44] (01989) 730 450; Website: www.dipa.dhamma.org Email: info@dipa.dhamma.org

Dhamma Padhāna, European Long-Course Centre, Harewood End, Herefordshire, HR2 8JS, UK Website: www.eu.region.dhamma.org/os username <oldstudent> password <behappy> Email: info@padhana.dhamma.org

Dhamma Dvāra, Vipassana Zentrum, Alte Strasse 6, 08606 Triebel, Germany Tel: [49] (37434) 79770; Website: www.dvara.dhamma.org Email: info@dvara.dhamma.org

Dhamma Mahī, France Vipassana Centre, Le Bois Planté, Louesme, F-89350 Champignelles, France. Tel: [33] (0386) 457 514; Fax [33] (0386) 457 620; Website: www.mahi.dhamma.org Email: info@mahi.dhamma.org

Dhamma Nilaya,, 6, Chemin de la Moinerie, 77120, Saints, France Tel/Fax: [33] 1 6475 1370; Mobile: 0609899079 Email: vcjuly2001@orange.fr

Dhamma Aṭala, Vipassana Centre, SP29, Lutirano 15 50034 Lutirano (Fi) Italy Tel: Off. [39] (055) 804 818; Website: www.atala.dhamma.org Email: info@atala.dhamma.org

Dhamma Sumeru, Centre Vipassana, No. 140, Ch-2610 Mont-Soleil, Switzerland Tel: [41] (32) 941 1670; Website: www.sumeru.dhamma.org Email: info@sumeru.dhamma.org Registration office: registration@sumeru.dhamma.org

Dhamma Neru, Centro de Meditación Vipassana, Cami Cam Ram, Els Bruguers, A.C.29, Santa Maria de Palautordera, 08460 Barcelona, Spain Tel: [34] (93) 848 2695; Website: www.neru.dhamma.org Email: info@neru.dhamma.org

Dhamma Pajjota, Dhamma Pajjota, Belgium, Light (or Torch) of Dhamma, Vipassana Centrum, Driepaal 3, 3650 Dilsen-Stokkem, Belgium. Tel: [32] (0) 89 518 230; Website: www.pajjota.dhamma.org Email: info@pajjota.dhamma.org

Dhamma Sobhana, Lyckebygården, S-599 93 Ödeshög, Sweden. Tel: [46] (143) 211 36; Website: www.sobhana.dhamma.org Email: info@sobhana.dhamma.org

Dhamma Pallava, Vipassana Poland **Contact:** Malgorzata Myc 02-798 Warszawa, Ekologiczna 8 m.79 Poland Tel: [48](22) 408 22 48 Mobile: [48] 505-830-915 Email: info@pl.dhamma.org

Dhamma Sukhakari, East Anglia (UK)

North America

Dhamma Dharā, VMC, 386 Colrain-Shelburne Road, Shelburne MA 01370-9672, USA Tel: [1] (413) 625 2160; Fax: [1] (413) 625 2170; Website: www.dhara.dhamma.org Email: info@dhara.dhamma.org

Dhamma Kuñja, Northwest Vipassana Center, 445 Gore Road, Onalaska, WA 98570, USA Tel/Fax: [1] (360) 978 5434, Reg Fax: [1] (360) 242-5988; Website: www.kunja.dhamma.org Email: info@kunja.dhamma.org

Dhamma Mahāvana, California Vipassana Center 58503 Road 225, North Fork, California, 93643 Mailing address: P. O. Box 1167, North Fork, CA 93643, USA Tel: [1] (559) 877 4386; Fax [1] (559) 877 4387; Website: www.mahavana.dhamma.org Email: info@mahavana.dhamma.org

Dhamma Sirī, Southwest Vipassana Center, 10850 County Road 155 A Kaufman, TX 75142, USA Mailing address: P. O. Box 7659, Dallas, TX 75209, USA Tel: [1] (972) 962-8858; Fax: [1] (972) 346-8020 (registration); [1] (972) 932-7868 (center); Website: www.siri.dhamma.org Email: info@siri.dhamma.org

Dhamma Surabhi, Vipassana Meditation Center, P. O. Box 699, Merritt, BC V1K 1B8, Canada Tel: [1] (250) 378 4506; Website: www.surabhi.dhamma.org Email: info@surabhi.dhamma.org

Dhamma Maṇḍa, Northern California Vipassana Center, Mailing address: P. O. Box 265, Cobb, Ca 95426, USA Physical address: 10343 Highway 175, Kelseyville, CA 95451, USA Tel: [1] (707) 928-9981; Website: www.manda.dhamma.org Email: info@manda.dhamma.org

Dhamma Suttama, Vipassana Meditation Centre 810, Côte Azélie, Notre-Dame-de-Bonsecours, Montebello, (Québec), J0V 1L0, Canada Tél. 1-819-423-1411, Fax. 1- 819- 423- 1312 Website: www.suttama.dhamma.org Email: info@suttama.dhamma.org

Dhamma Pakāsa, Illinois Vipassana Meditation Center, 10076 Fish Hatchery Road, Pecatonica, IL 61063, USA Tel: [1] (815) 489-0420; Fax [1] (360) 283-7068 Website: www.pakasa.dhamma.org Email: info@pakasa.dhamma.org

Dhamma Toraṇa, Ontario Vipassana Centre, 6486 Simcoe County Road 56, Egbert, Ontario, L0L 1N0 Canada Tel: [1] (705) 434 9850; Website: www.torana.dhamma.org Email: info@torana.dhamma.org

Dhamma Vaddhana, Southern California Vipassana Center, P.O. Box 486, Joshua Tree, CA 92252, USA. Tel: [1] (760) 362-4615;; Website: www.vaddhana.dhamma.org Email: info@vaddhana.dhamma.org

Dhamma Patāpa, Southeast Vipassana Trust, Jessup, Georgia, South East USA Website: www.patapa.dhamma.org

Dhamma Modana, Canada Tel: [1] (250) 483-7522; Website: www.modana.dhamma.org Email: info@modana.dhamma.org

Dhamma Karunā, Alberta Vipassana Foundation Tel: [1](403) 283-1889 Fax: [1](403) 206-7453 Email: registration@ab.ca.dhamma.org

Latin America,

Dhamma Santi, Centro de Meditação Vipassana, Miguel Pereira, Brazil Tel: [55] (24) 2468 1188. Website: www.santi.dhamma.org Email: info@santi.dhamma.org

Dhamma Makaranda, Centro de Meditación Vipassana, Valle de Bravo, Mexico Tel: [52] (726) 1-032017 Registration and information: Vipassana Mexico, P. O. Box 202, 62520 Tepoztlan, Morelos Tel/Fax: [52] (739) 395-2677; Website: www.makaranda.dhamma.org Email: info@makaranda.dhamma.org

Dhamma Pasanna, Melipilla, Chile Email: info@pasanna.dhamma.org

Dhamma Sukhadā, Buenos Aires, Argentina, **Contact:** Vipassana Argentina, Tel: [54] (11) 6385-0261; Email: info@ar.dhamma.org

Dhamma Veṇuvana, Centro de Meditación Vipassana, 90 minutes from Caracas, Sector Los Naranjos de Tasajera, Cerca de La Victoria, Estado Aragua, Venezuela. (See map on the website) Tel: [58] (212) 414-5678 For information and registration: Calle La Iglesia con Av. Francisco Solano, Torre Centro Solano Plaza, Of. 7D, Sabana Grande, Caracas, Venezuela. Phone: [58](212) 716-5988, Fax: 762-7235 Website: www.venuvana.dhamma.org Email: info@venuvana.dhamma.org

Dhamma Suriya, Centro de Meditación Vipassana, Cieneguilla, Lima, Perú Email: info@suriya.dhamma.org

South Africa

Dhamma Patākā, (Rustig) Brandwacht, Worcester, 6850, P. O. Box 1771, Worcester 6849, South Africa Tel: [27] (23) 347 5446; **Contact:** Ms. Shanti Mather, Tel/Fax: [27] (028) 423 3449; Website: www.pataka.dhamma.org Email: info@pataka.dhamma.org

Russia

Dhamma Dullabha: Avsyunino Village, Dhamma Dullabha (formerly camp "Druzba") 142 645 Russian Federation, Phones +7-968-894-23-92, +7-901-543-16-27

ISBN 978-81-7414-209-6
VRI - H1 2